RNI No- 65373/94 मूल्य रु. 30 अंक 28 अक्तूबर 2011 - दिसम्बर 2013

चन्द्रताल

लोकगाथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन 9

सिकुड़ते ज़रिम 15

मोक्ष का मार्ग है विपश्यना भी 36

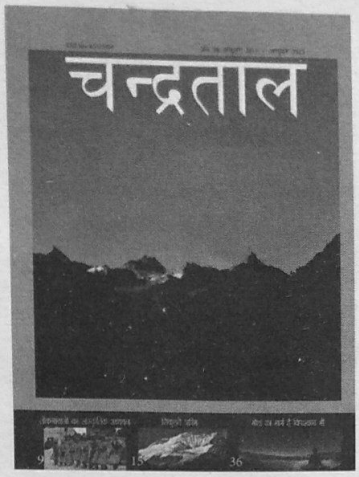

चन्द्रताल

अंक 28, अक्तूबर 2011 - दिसम्बर 2013

आवरण : मेनथोसा
छायाचित्र : राजेश बाबा

संस्थापकः
स्वंगला एरतोग,
लाहुल स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु
सोसाईटी रजि० संख्या ल स 42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21,1860

संपादक :
डॉ. छिमे शाशनी

उप संपादक :
बलदेव कृष्ण घरसंगी

संपादकीय सलाहकार :
बिशन दास परशीरा
अजेय कुमार

प्रकाशक :
सतीश कुमार

डिज़ाईन/ले आऊट :
किशन बोकटपा

संपर्क :
उप संपादक,
151/1 रामशिला,
अखाड़ा बाज़ार, कुल्लू, हि०प्र० 175101
9816019157 / 9459774779
editor.chandrataal@gmail.com

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए
प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा
डिजिटल एक्सप्रेस, मनाली से मुद्रित एवं
नीरामाटी, ज़िला कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित।
संपादक, डॉ. छिमे शाशनी।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं
उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

संपादन व प्रबन्धन अवैतनिक।
चन्द्रताल सहयोग राशि :
एक प्रति - रु० 30
वार्षिक - रु० 120

इस अंक में:

सम्पादकीय		: 2
पाठकीय		: 3
कसौटी		: 4
कविताएं :		
बारिश की बूंदें	: यूसुफ	: 5
पहाड़–मैदान	: डॉ. उरसेम लता	: 5
लाहुली महिला	: शेर सिंह मेरुपा	: 6
एक सफेद बाल	: स्मिता लोप्पा	: 6
बेगाने रुख न समझ पाती	: वर्षा	: 6
पोटेटो पोईम	: तोबदन	: 7
कभी-कभी बहुत अच्छा लगता है	: विक्रम कटोच	: 8
ख़ामोश प्रतिरोध	: सुनीता कटोच	: 8
संस्कृति शोध :		
लाहुल की लोकगाथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन	: स्व. के. अंगरूप लाहुली	: 9
एडवेंचर :		
हिमालय एक अनुगूँज कक्ष है	: कर्नल प्रेम	: 13
आवरण कथा :		
लाहुल–स्पीति और कुल्लू हिमालय के सिकुड़ते ज़रिम	: छेरिङ दोर्जे	: 15
इतिहास :		
लाहुल में बेगारी की प्राचीन प्रथा	: तोबदन	: 18
जीवनी :		
मिलारेपा की जीवनी	: अजेय एवं ठिनले नमज्ञल	: 19
लोकगाथा :		
शिव–पार्वती विवाह गीत	: सतीश कुमार लोप्पा	: 23
साधना :		
मोक्ष का मार्ग है विपश्यना भी	: सीता राम गुप्ता	: 26
कहानी :		
और वह जीत गया	: डॉ. दयानन्द गौतम	: 28
धर्म :		
गौ सेवा से गोलोक की प्राप्ति	: पंडित रोशन लाल शास्त्री	: 31
क्षेत्रीय दृष्टि :		
अब लाहुल की बारी है	: विजय कुमार बौद्ध	: 36
संस्मरण :		
शीत मरुस्थल में कुछ दिन	: डॉ. सूरत राम ठाकुर	: 38
चनाब किनारे बचपन	: गणेश ग़नी	: 48
देव परम्परा :		
कुलूत जनपद में नागों एवं अप्सराओं का वर्चस्व	: तेजराम नेगी	: 46
विविध :		
बौद्ध दर्शन में नारी की गरिमा	: डॉ. अशोक कुमार	: 30
श्रद्धांजलि		: 35
लाहुली मुहावरे	: विकास ओथङ्बा	: 47
बधाईयां		: 50
समीक्षा	: बलदेव कृष्ण घरसंगी	: 51

सम्पादकीय

चन्द्रताल का यह अंक एक लम्बे अन्तराल के बाद प्रकाशित हो पाया है। एक समय तो ऐसा लगने लगा जिस उद्देश्य को लेकर पत्रिका निकालने का हमारा संकल्प था, कहीं हम उस से डगमगा तो नहीं गए। अपनी विवशताओं, व्यस्तताओं को व्यक्त करने का यहाँ कोई औचित्य नहीं; बस यही कहना है चन्द्रताल का यह अंक अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद हम आप तक पहुंचा पाने में सफल हो पा रहे हैं। इस अंक में स्थायी स्तम्भों के साथ रचनाओं की विविधता है, जिन में संस्कृति, इतिहास और आज की कुछ ज्वलन्त समस्याओं पर लिखी गई रचनाएं हैं।

'लोकगाथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन' में लोकगाथाओं की विशेषता बताते हुए गाहरवादी में प्रचलित ग्रेग्स (जो गेय है) के वर्णन के साथ, इस वादी में हर धार्मिक, सांस्कृतिक आयोजन के निर्विघ्न समापन के लिए स्थानीय ग्राम-देवता की पूजावन्दन की अनिवार्यता को रेखांकित किया गया है। 'शिव-पार्वती विवाह गीत' में लाहुल के पटन वेली में बारात के प्रस्थान से पूर्व गीत और नृत्य के माध्यम से शिव की अराधना की प्रथा का वर्णन है ताकि विवाह कारज में कोई व्यवधान न पड़े। इस घुरे के माध्यम से बताया गया है कि शिव-शक्ति का मिलन सहज नहीं, कई दुर्निवार पड़ावों को पार कर के ही सम्भव हो सकता है। 'हिमालय एक अनुगूंज कक्ष है' में लेखक ने अपनी अनुभूतियों को शब्दचित्र के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। 'लाहुल में बेगारी की प्राचीन प्रथा' में बेगारी की प्रथा के बहाने स्वतन्त्रतापूर्व लाहुल-स्पीति के लोगों की अवशता का चित्रण है। 'कुलूत जनपद में नागों और अप्सराओं का वर्चस्व' में अठारह नागों की उत्पत्ति, सात देवांगनाओं का दुःखी जनजीवन के सहायतार्थ शिरड़ के पीछे ऊँचे पर्वत पर निवास का वर्णन है। 'शीत मरुस्थल में कुछ दिन' में लेखक ने दसवीं शताब्दी से आरम्भ कर स्पीति का ऐतिहासिक दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के साथ गोम्पाओं और प्रकृति का रमणीय दृश्य साकार कर वहां के रीति-रिवाज़ों का उल्लेख किया है। 'गौ सेवा से गोलोक की प्राप्ति' लेख में हिन्दू धर्म में गौ को माता मानने का कारण तथा गौ को भारतीय संस्कृति का प्रतीक मान कर गौरक्षण का आह्वान है। 'गुरु मरपा को त्यागने का निर्णय' में थुछेन का बुद्धत्व प्राप्ति का ज्ञान अर्जित करने गुरु मरपा के पास जाना, गुरु द्वारा शिष्य को परखने के लिए शारीरिक, मानसिक यन्त्रणा देना तथा थुछेन के उहापोह (धर्म और धन में किसे महत्व दें) का वर्णन है।

'लाहुल-स्पीति, कुल्लू के सिकुड़ते ज़रिम' में लेखक ने हिमनद सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों, भूमंडलीय तापन और पर्यावरण प्रदूषण (विभिन्न परियोजनाओं के कारण), हिमनद के पिघलने पर घाटी के निर्जन मरुभूमि में परिणत होने की आशंका और चिन्ता जताई है तो 'अब लाहुल की बारी है' में लाहुल में स्वीकृत विभिन्न विद्युत परियोजनाओं विशेषकर बांधों से लाहुल घाटी की संस्कृति, जलस्रोतों पर पड़ने वाले कुप्रभाव से परिचित कराने के साथ विस्थापित होने के दंश झेल रहे लोगों की शोचनीय स्थिति से अवगत करा कर आगाह किया है कि लाहुलवासी सही निर्णय लें। 'और वह जीत गया' कहानी में आज के युग की विडम्बना को उकेरित किया गया है। आत्मकेन्द्रित सम्वेदनाशून्य युवापीढ़ी के दंश को झेलने वाला पिता कैसे कठोर निर्णय लेने के लिए विवश हो जाता है। अन्य लेखों के अतिरिक्त पटनी बोली में प्रयुक्त कहावतें और कविताएँ इस अंक के मुख्य आकर्षण हैं।

डॉ. छिमे शाशनी

सम्पादक चन्द्रताल,
नमस्कार।

चन्द्रताल भले ही लम्बे समय से प्रकाशित नहीं हो पा रहा है परन्तु इसकी छाप दिलो-दिमाग पर हमेशा रहेगी। मेरे पास चन्द्रताल का प्रवेशांक भी है और 2011 में छपा आखिरी अंक 27 भी है। पहला अंक 1994 में आप के ही सम्पादन में आया था। लगभग दो दशक होने वाले हैं। यह सफर लम्बा है और कई लोगों के मेहनत का परिणाम है। प्रवेशांक में अजेय की कविताएं, सतीश की कहानी, तोबदन का लेख तथा सुखदास जी का कला पर आलेख आदि से अंक समृद्ध हुआ था। इन वर्षों में इन्हीं लोगों ने साहित्य में कई मुकाम हासिल किए हैं।

अजेय का हाल ही में काव्य संग्रह 'इन सपनों को कौन गायेगा' प्रकाशित हुआ है। यह लाहुल के लोगों के लिए गर्व का विषय है। अन्य लेखकों ने भी राष्ट्रीय स्तर पर अपना नाम रोशन किया है।

2011 के बाद चन्द्रताल का प्रकाशित न होना दुखद है। यह निरन्तरता टूटनी नहीं चाहिए थी। भले ही साल में एक ही अंक आये, पर आये ज़रूर। अब तो सभी समर्थ हैं। धन की कमी नहीं है। लेखकों की भी कमी नहीं है। आवश्यकता है तो केवल सभी को एक सूत्र में पिरोने की।

लाहुल में कई बड़े नाम हैं जो पत्रिका की सेवा अपनी रचनाओं से कर सकते हैं। उन्हें ज़िम्मेवारी सौंपनी होगी। छेरिङ दोर्जे, तोबदन, अजेय, सतीश लोप्पा आदि नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं हैं।

लाहुल से बाहर के लेखक भी अपना योगदान देते आएं हैं। कुछ पुराने अंकों में डॉ. उरसेम लता, सुरेश सेन निशान्त, डॉ0 सूरत ठाकुर, डॉ. दयानन्द गौतम आदि लेखकों व कवियों ने अपनी रचनाएं दी हैं। आगे भी इनका योगदान सुनिश्चित करके चन्द्रताल को एक सुन्दर साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका बनाया जा सकता है।

पुराने पाठकों का लगाव चन्द्रताल से अवश्य है इसलिए जब भी नये अंक आये तो उन्हें उनकी प्रति अवश्य मिले। चन्द्रताल नियमित नहीं आ रही है इसलिए वार्षिक सदस्यता के स्थान पर एक प्रति का ही मूल्य वसूला जाए तो पाठक और अधिक बढ़ सकते हैं। उनकी सूची को भी अपडेट करना आवश्यक है।

चन्द्रताल में लोककथाएं, लोक गाथाएं, लोकगीत तथा शोधात्मक लेख आने की अपार सम्भावनाएं हैं। इस दिशा में यदि कार्य होगा तो हर अंक एक दस्तावेज़ बन जाएगा। कभी-कभी किसी एक विधा पर विशेषांक भी यदि निकले तो यह एक बड़ा योगदान होगा। फिलहाल तो चन्द्रताल का नियमित होना ही प्राथमिकता होनी चाहिए है। यदि पत्रिका वार्षिक भी बन जाए तो भी कोई हर्ज़ नहीं है। परन्तु इसका स्तर ऊँचा करना होगा ताकि लोगों को बेसब्री से इन्तज़ार रहे। चन्द्रताल से जुड़ी टीम धैर्यवान है और इसका फल मीठा ही होगा।

नए अंक के इन्तज़ार में∞

गणेश 'ग़नी'
भुट्ठी कॉलोनी।

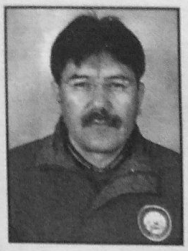

दो धाराओं में बहता लाहुली समाज

लाहुली समाज स्वतन्त्रता से लेकर आज तक विभिन्न परिस्थितियों से जूझते हुए एक ऐसे पड़ाव पर पहुंचा है जहां वह अपने आपको दो धाराओं में बंटा हुआ पा रहा है। जीवनयापन की आर्थिकी से धीरे-धीरे निकलते हुए सत्तर के दशक में यह धारा बाज़ार में प्रवेश कर गई और इस के साथ ही समाज में निरन्तर पाने की जगह खोने की प्रक्रिया शुरू हो गई। हम पैसे की आर्थिकी में तो प्रवेश कर गए पर साथ ही अपनी माँबोली, सामाजिक परिवेश, भाई-चारा, नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन का कारण भी बनते गए। नई आर्थिक व्यवस्था में कुछ गुणकारी परिवर्तन भी हुए जिससे समाज के प्रगति को गति मिली, लेकिन इस नवधनाढ्यता से निपटने के लिए सामाजिक स्तर पर कोई प्रतिरोधक क्षमता विकसित नहीं होने से समाज पतनोन्मुखता की डगर पर चल रहा है। समाज ने अनायास प्रगति पकड़नी शुरू कर ली और इस प्रक्रिया में हम पुराने रीति-रिवाज़ों और मूल्यों को दरकिनार करने लगे, यह सोचकर कि यह तो रूढ़िवादिता है और इस तरह आँखें मूंद कर उत्तरोत्तर सशक्त बाह्य समाज की अभिव्यक्तियों, मूल्यों, संस्कारों, चिन्हों को लेते चले गए। इससे हमारी बची-खुची प्रतिरोधक क्षमता (त्यौहार, आर्थिक संस्थाएं, कला, माँबोली, संस्कार) क्षीण ही नहीं, लुप्त होती चली गई। इसी तरह हमारी सबसे बड़ी ताकत संयुक्त परिवार आज छद्म रूप में तो जीवित है परन्तु आंतरिक अवमूल्यन से ग्रस्त हो कर यह लाहुली समाज को दो धाराओं में बंटने पर विवश कर रही है। यह दो धाराएँ कौन सी हैं? चन्द्रा और भागा की दो धाराएँ जिस तरह तांदी प्रयाग में एक भव्य आकार लेती है उसी तरह क्या इन दो धाराओं का भी कहीं पर संगम होने की संभावना है? तो उत्तर है अभी तक तो नहीं। अभी तो यह और विकराल रूप लेगी। तो यह दो धाराएं जो संयुक्त परिवार के विघटन व अवमूल्यन तथा बाज़ार की आर्थिक व्यवस्था के अत्यधिक दवाब से उत्पन्न हुई है; जिस में एक धारा लाहुल में रह रहे संयुक्त परिवार के एकाकी उत्तराधिकारी जिस पर पारिवारिक संस्था के साथ-साथ नए व पुराने सामाजिक मूल्यों में सामंजस्य बिठाते हुए चले आ रहे पारिवारिक व्यवस्था को चलाए रखना है। जहां उसे रात दिन मेहनत करते हुए आधुनिकता के बोझ तले अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा की विवशतावश अपूर्ण परिवार के दंश के साथ दूसरी धारा की छद्म चकाचौंध से उत्पन्न कुंठा से भी लड़ना पड़ता है। कुल मिलाकर यह दुविधा व कुंठा से ग्रस्त हमेशा असंतुष्ट और शिकायत करने की मुद्रा में दिखाई देती है। और दूसरी धारा जो आधुनिक और प्रगतिशील लगती है, लेकिन मुख्यधारा लाहुल से कोसों दूर अपनी नई व्यवस्थित जीवन में खुशी ढूंढती दिखाई देती है। यह धारा आधुनिक बाज़ार अर्थव्यवस्था के अत्यधिक दबाव से उत्पन्न नौकरी पेशा जो कि लाहुल के आधी से ज़्यादा आबादी का प्रतिनिधित्व करता है। इन का अपनी स्थिति पर कोई नियंत्रण नहीं है। इस तरह यह धारा अनियंत्रित होकर बह रही है। क्योंकि यह धारा अपने परिवेश से विलग हो कर बह रही है, अतः इस की अपने अवमूल्यन से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता न के बराबर है। यह आधुनिकता का लबादा ओढ़े समाज के लिए अत्यधिक खतरे की घंटी है। इस स्थिति से उबरने के लिए दोनों धाराओं में सामंजस्य बिठाने की आवश्यकता है। यह दुरूह कार्य कैसे संभव हो? समाज में आज पुनर्जागरण की आवश्यकता है और इस पुनर्जागरण का दायित्व साहित्यकारों, कवियों, कलाकारों, चिन्तकों और वैचारिक उद्यमियों पर है। इस दिशा में धीमा व मंद सा कार्य हो रहा है लेकिन इसे अब बड़ा आकार लेना होगा, अन्यथा यह दो धाराएं चंद्रा और भागा की तरह तांदी प्रयाग पर नहीं, अपितु अरबसागर की अथाह गहराई में जलमग्न हो कर लुप्त हो जाएंगी।

बलदेव कृष्ण घरसंगी

बारिश की बूंदें

यूसुफ

धारा के शिखरों में बसने वाले,
ड्रिलबू के शिखरों पर रमने वाले,
क्या तुम उतरोगे उस शीतल धारा के साथ,
खेत-खलियानों के कोने-कोने में रचे-बसे,
माँ के अनकहे-अनसुने दुःखों को
साथ बहा ले जाने के लिए.....!
उस जगह की मिट्टी को जहां उस ने अपने
पीठ के बोझ को साँझा किया है,
पेड़ की छांव में पड़े सूखे पत्तों को
जिन पर दो घड़ी लेट कर पलकें झपकाई हैं,
कब उतरोगे तुम
साथ वहां ले जाने के लिए
ले जाना साथ
चनाब की प्रबल धाराओं संग बहा कर
महा सफर में
महा सागर तक,
और फिर महासागर से उठते उन बादलों को
बरसा देना उस शहर में,
जहां उन का बेटा,
फ्लेट की बालकनी में बैठा,
ब्लैक बैरी के मोबाइल से
आर्किटेक्ट को निर्देश दे रहा है,
"मुझे डुप्लेक्स में तीन बेडरूम के साथ
एक पूजा घर भी चाहिए....."
बेटा सयाना हो चुका है, मगर उस की यादाश्त
कमज़ोर हो गई है
भूल गया है.....जब वह घर से निकला था,
उस के हिस्से की सारी दुश्वारियां माँ ने
अपने हिस्से में रख ली थी.....
धारा के शिखरों में बसने वाले
ड्रिलबू के शिखरों पर रमने वाले
तू आज भिगो दे उसकी आत्मा को,
ताकि वह पहचान सके बारिश की बूंदों में
माँ के उन आंसुओं के खारेपन को
जो खेत की मुंडेर पर
उस के इन्तज़ार में बहाए हैं.....!

अधिकारी, यूको बैंक, कलकत्ता।

पहाड़-मैदान

डॉ. उरसेम लता

मैदान की कीमत
पहाड़ ही जानता है दिल्ली नहीं
बीसियों बेड़ियों में जकड़ी
पहाड़ियां ही जानती हैं
मैदान होने का सही अर्थ
दर्जनों तर्कों को ताक में रखे
'शून्य' का भय
मैदान नहीं होने देता पहाड़ को।
निरीह भेड़ों
लाचार स्त्रियों
बेबस दलितों की आत्मा तक को बेध
एक अनदेखे
अनबूझे सत्य का भय फैला
फन फैलाये खड़ा रहता है पहाड़
सीधी खड़ी
पथरीली पगडंडियों में
थके हारे पहाड़ी को
किस कदर सुकूं दिलाता है
पहाड़ों पे उभरता छोटा सा हरी घास का मैदान
ये भी जानता है पहाड़ ही।
जब कभी सिर उठाता है पहाड़ पे मैदान
छोटा ही सही
बेहद खूबसूरत दिखता है
और
दिखता है उससे भी खूबसूरत
कठोर पहाड़ों को मैदान करता
वो.....
एक अकेला आदमी !

एसो. प्रोफेसर, महाविद्यालय, हरिपुर।

लाहुली महिला

शेर सिंह मेरुपा

पसीने के माथे से निकले पसीना
ऐसा है उनका जीना
ओस की बूंदों से लेकर
तारों की धीमी आँच तक
मेहनत की सुराही में बन्द रहते हैं
जी तोड़ मेहनत
बरसों के बाद मिली हुई सखी की तरह
हमेशा बाहें थामे रहती है
पीठ पर किल्टा
रीढ़ की हड्डी की तरह
हमेशा साथ रहती है
बच्चे के चेहरे में लाली
खेत में हरियाली
बखूबी सम्भाले सामाजिक सरोकारों की थाली
आईना टूटा हुआ होता है
सजने संवरने का शौक कम होता है
नदी नालों में अपने धुंधले चेहरे देखकर
खुश हो जाती हैं
अजी महिला ये लाहुली हैं।

गांव बिलिङ, लाहुल।

एक सफेद बाल

स्मिता लोप्पा

एक सफेद बाल है दिखाती बुढ़ापे के उस दौर को
जो अपेक्षायुक्त है, सम्वेदना रिक्त है,
प्रतीक जो सौन्दर्य के ह्रास का
वह है सिर्फ एक सफेद बाल।
एक सफेद बाल दिखाता है वह निर्मम दृश्य,
झुर्रियों से लिपटे गाल और
दर्द से लंगड़ाती टांग।
विचारने पर मजबूर करती कि
क्यों निकल आया यह सफेद बाल?
एक सफेद बाल संकेत है 'उसका' कि
वक्त रहते सम्भल जा!
काम के ढेर पड़े हैं कब करेगा?
आयु घटती दिखाती है एक सफेद बाल।
एक सफेद बाल छुपता नहीं मेंहदी के रंग से,
अरे! मुख पर पाउडर पोतना छोड़ो,
बुढ़ापा फाटक पर दस्तक दे रहा है।
तुम चाहे फाटक न खोलो,
पर उसे तो आना ही है,
इसी का संकेत था एक सफेद बाल ।।.....

गांव वरि, लाहुल।

बेगाने रुख न समझ पाती.....

वर्षा

इक हरे भरे तरु की
लहराती शाख में
हिलती डुलती पत्ती की तरह मैं
हर बार अनजानी
हवाओं के झोंकों में
अनजानी खुशियां ढूंढूं मैं
पर बेगाने रुख नहीं समझ पाती
कोमल रिश्तों का नीर पाकर
मैं खुशियों की नमी पाती
फिर कभी माँ, कभी भाभी
कभी बहन, कभी पत्नी बन कर
मैं विश्वास की कली खिलाती
हर भंवरे रूपी व्यक्ति विशेष को
विश्वासी मान कर मैं
अपना करीबी बनाती
पर उन हवाओं के झोंकों में
बेगाने रुख न समझ पाती
जीवन पर्यन्त अपने रंग से
मैं तरु की सुन्दरता बनाती
इक दिन वही रंग छट जाने से
समझता वो तरु भी मुझको बोझ
मैं पीली, मुरझा चुकी
अपने अंतिम क्षण में
टूट कर न गिरने की कोशिश करती
पर करते रहते भरसक प्रयास
हवा में विश्वासघाती, कपटी
हर सीमा तोड़ देते वो अन्यायी
जो आत्मरक्षण में बनाती
मैं फिर भी उन हवाओं के झोंको में
बेगाने रुख न समझ पाती
अन्त में पर वही हुआ
जैसा भरी सभा में
पाण्डवपत्नी संग हुआ
जैसे उसके चीर गिरे थे
उसके सकुचाते तन से
निर्दयी धरा पर गिर आई
मैं भी शाख से टूट के
जहां हर कदम हर ओर से मुझे
फाड़ने, कुचलने के लिए बढ़ रहा था
मुझे मान रहे हैं कमज़ोर

जिसे मसल सकते है हाथों में
मैं निःशब्द हर आते तूफानों को
मेरी ही तरफ पाती
पर उन हवाओं के झोंकों में
बेगाने रुख ना समझ पाती
मुझे समझ रहे सब शक्तिहीन
बुद्धिहीन हैं सारे
नहीं मिटा सकते मेरा अस्तित्व आसानी से
क्या हुआ जो अब पीली पड़ गई हूँ
तो क्या बस बन कर रह गई हूँ मैं
विलासिता के बन कर सहारे
भोग की वस्तु नहीं हूँ मैं
इक छोटी सी चिंगारी से
बन सकती हूँ भीषण ज्वाला
कर सकती हूं भस्म सारे नज़ारे
पर ना जाने हर बार क्यों
हर मोड़ पर छल पा कर भी
मैं हर विश्वास फिर बनाती
पर.....
उन हवाओं के झोंकों में
बेगाने रुख ना समझ पाती....।

छात्रा, महाविद्यालय कुल्लू।

पोटेटो पोईम

लाहुल का आलू - आलू की कविता

तोबदन

मिट्टी लाहुल की, कुछ शुष्क है, तो कुछ उपजाऊ,
हल चलाओ एक बार, परन्तु पानी दो बार बार।
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू ।
एक है चन्द्रमुखी, तो दूसरे का नाम है ज्योति ।।1।।

बेटा हो गया है अफसर, दूसरा भी
हो जाएगा, नहीं तो बनेगा ठेकेदार।
मिट्टी से परहेज़ है सबको आजकल,
बूढ़ा बूढ़ी मेहनत को मजबूर।
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू।
एक तरफ है बिहारी तो दूसरी ओर है बहादुर ।।2।।

खेत हैं बाकी, कुछ में मटर तो कुछ में बोया है सब्ज़ी,
बाकी सब झंझट से ले ली है निजात, भेड़ें दी हमने सब बेच।
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू।
एक उबाल कर खाने का, तो एक बीज के लिए बेचने का ।।3।।

वैसे तो फैशन है सेठों में शक्तिभोग और बास्मती खाने का,
मगर चाहत पुरानी कुछ चीज़ों की छूटती नहीं है
जल्दी से बुजुर्गों में।
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू।
एक से बनाया तरीदार थुक्पा,
तो दूसरे का ओड़ोंग सूखा मिर्चीला ।।4।।

बारदाना आता है अपना वापिस, नाम बदल कर कभी,
तो कभी आधा,
कभी भागें बोरी के लिए, तो कभी ट्रक को,
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू।
बस यूं ही बीत जाता है वक्त काफी, सीज़न आशिकी का,
आधा तलाश में साजन के, तो गम में जुदाई के,
बेवफा सनम के, आधा ।।5।।

उठाना है आलू, जल्दी से जल्दी खेत से,
छोड़ना है न करगा में, न दालंग के मैदान में,
सीधा पहुंचाना है मनाली के आलू ग्राउंड में।
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू
कौन जाने क्या होगा आलू का, वहां से आगे ।।6।।

खराब है सड़क तो खराब सही।
ब्लॉक हो रोड कमानी के टूटने से किसी ट्रक के,
तो भी कोई बात नहीं, आलू बोया है कुछ और नहीं।
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू।
रूट बदल देंगे, छोड़ रोहतांग पास को,
मोड़ ट्रक को हम दौड़ाएंगे तब रोहतांग टनल से ।।7।।

जलता है दिल मेरा जैसे कि सुलग रहा हो उपला तन्दूर में,
देखकर खुले मैदान में सड़ते आलू के ढेर को।
फूटती हैं आंखों से पानी की बूंदें,
जैसे कि टपकती हैं बूंदें पानी की दार-ज़ुग[1] की नोक से,
फैंकते हैं ये बेरहम जब ढेर आलू का नदी में।
आलू बोया तो आया दोनों हाथ में आलू।
बेदर्द हैं ये सोसाइटी वाले, बेवफा हैं सब सेली-मैनी इसके,
सब पूछते हैं, कहां है वह,
जिसे कहते हैं रिजेकशन का आलू ।।8।।

दिया है दिल आधा प्राईवेट को मुनाफे के लिए,
तो आधा सोसाइटी को भविष्य की सुरक्षा के लिए।

बोया आलू तो आया दोनों हाथ में आलू।
एक है मक्खी चूस, तो दूसरा है बेशर्म हद से ज़्यादा ।।9।।

प्राईवेट की हो गयी कोठी ऊंची, ऊंची शान।
सोसाइटी को किया खोखला सूंडी के रोग ने,
उन्हीं ने जिनको बनाया था लखिया खुद सोसाइटी ने।
बोया आलू, तो आया दोनों हाथ में आलू।
बूढ़ा बूढ़ी मलते रहे दोनों हाथ, आंखें फाड़े फाड़े।
जब देखा, बैठे हैं दो लोमड़ी, एक ही टेबल पर, बीयर बार में ।।10।।

आलू लाहुल का, बहुत है नाम इसका, कहते हैं बीज है यह सर्वोत्तम।
कोलकाता पहुंचा, सूरत पहुंचा, और पहुंचा पाकिस्तान।
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू।
दूर होता है एरियर वसूली को हर साल,
एक कोलकाता तो सूरत को दूसरा।
आलू बोया, तो आया दोनों हाथ में आलू।
दोनों हाथ में है आलू तुम्हारे, मन्दी हो या हो उछाल ।।11।।

जन्म लेगा यहीं टुल्कु[2] नया आलू का,
हो जाएगा जब क्रैश विन्डोज़, बूढ़ा-बूढ़ी का।
बैठे बैठे घर में, धरे हाथ पर हाथ तब,
डाउनलोड होगा गूगल से फ्री डिजिटल आलू का।
बोया आलू, तो आया दोनों हाथ में आलू ।।12।।

दार-ज़ुग[1] - कलम जैसा लटकता जमा हुआ बर्फ।
टुल्कु[2] - अवतार।

कभी-कभी बहुत अच्छा लगता है

विक्रम कटोच

आँखों में सपने
सपनों में विश्वास अच्छा लगता है
ज्ञान की तपिश से भाप बनकर उड़ता
"मैं" अच्छा लगता है
सही को सही
गलत को गलत कहना अच्छा लगता है
बड़ों का आशीर्वाद
अपनों का साथ अच्छा लगता है
लड़ने का ज़ज़्बा
यह जुनून अच्छा लगता है
एक कोशिश
खुद को ज़िंदा रखने की अच्छी लगती है
प्यास के बाद पानी
थकान के बाद नींद अच्छी लगती है
क्या कहूँ
बहुत बार बुरा भी लगता है
भीतर का अँधेरा
अज्ञानता आडम्बर स्वार्थ डर
बेईमानी चालाकी लालच
देख कर भी अंधा मैं
सुन कर भी बहरा मैं
ज़िंदा होकर भी मुर्दा मैं
देखकर बहुत बुरा लगता है
एक सोच ज़िंदा है
यह सोचकर
कभी-कभी बहुत अच्छा लगता है।

गांव तांदी, लाहुल।

खामोश प्रतिरोध

सुनीता कटोच

एक दिन हवाओं ने पेड़ों के कान में कुछ कहा
जिसे सुन पेड़ों की जड़ें तक सिहर गयी
पेड़ों को हवाओं की उन बातों पर विश्वास नहीं हुआ
पेड़ एक दूसरे के साथ फुसफुसाने लगे
जुनिपर और दियार ने एक दूसरे को ऐसे देखा
मानो अंतिम बार एक दूसरे को देख रहे हों
पहाड़ काफी देर से पेड़ों के परेशान चेहरे को देख रहा था
हवाओं के कुछ शब्द उस के कान में भी सुनाई पड़े थे
इंसानी दुनिया में मची हलचल का असर
प्रकृति की सुन्दर सी दुनिया पर भी पड़ रहा था
पहाड़ और पेड़ आपस में मशवरा करने लगे
पर दोनों असहाय से दिखे
ऐसा लग रहा था मानो चीख-चीख कर
इस दुनिया से यही कहना चाहते हों
हम तुम्हारे लिए अपने वजूद को क्यों मिटाएं
पर उन की चीख उन के अंदर ही दब कर रह गयी
भला बिना आवाज़ का विरोध कभी सफल हुआ है
हवाओं ने दोनों के आँखों के आंसुओं को पोंछा
वो अच्छे से जानता था कि इन पहाड़ों और पेड़ों का
सौदा हो चुका है, इंसान के विकास के नाम पर
इन हवाओं ने टिहरी और किन्नौर का हश्र देख लिया था
उसे अब लाहुल के विनाश का भी गवाह बनना था
उस ने भी अपने अंदर एक पहाड़ को तैयार कर लिया था।

गांव जाहलमा, लाहुल।

लाहुल की लोकगाथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन

स्व. के. अंगरूप लाहुली

©Tehmour Sushil Gyurmed

प्रस्तुत शोध पत्र को विद्वत समाज के समक्ष पेश करने से पूर्व, मैं लाहुल की भौगोलिक स्थिति और वहां के निवासियों के विषय में संक्षिप्त रूप से वर्णन करूंगा ताकि शोध पत्र की महत्ता को समझने में कठिनाई महसूस न हो। कुल्लू प्रदेश के उत्तर-पूर्व तथा रटांग पर्वत के उस पार घाटी को लाहुल कहते हैं। इस का क्षेत्रफल 1764 वर्गमील है। यह घाटी तीन वादियों में विभक्त है। तिनन, पटन तथा गाहरवादी। चन्द्र और भागा यहां की दो प्रमुख नदियां हैं। तन्दी नामक स्थान में इन दो नदियों का संगम होता है और उस से आगे ये दो नदियां अपना नाम छोड़ कर दरया. चनाब के नाम से मशहूर हो जाती हैं, जो पंजाब के पांच प्रमुख नदियों में से एक है। लाहुल, गरजा तथा स्वङला इस घाटी के पर्यायवाची नाम हैं। तिनन और गाहरवादी में बौद्ध परिवार तथा पटन वादी में अधिकतर हिन्दू परिवार के लोग निवास करते हैं। इन तीनों वादियों की बोलियां तो अलग अलग हैं ही, मान्यताओं में भी साम्य नहीं है। इन में समानता तो केवल खान-पान और वेश-भूषा में ही है। इस प्रकार प्रस्तुत लोकगाथा गाहरवादी के पुनन्पा समुदाय के मुख से निसृत होने वाली गाथा विषयक शोध पत्र है।

लोक गाथा लोकजीवन की अभिव्यक्ति है और इसका इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना मानव उद्भव का है। आदिकाल में मानव समाज जब आनन्द मस्त होकर गाते और मनोरंजन करते थे तो उनके गीत और गाथा मौखिक ही होते थे क्योंकि उस वक्त समाज में लिपि का प्रचार नहीं हुआ था। यही कारण है कि संसार की तमाम लोकगाथाओं की मुख्य विशेषता प्रायः एक सी ही रहती है, जैसे-

(1) रचयिता का अज्ञात होना। (2) मूल पाठ का अभाव। (3) स्थानीयता का पुट। (4) मौखिक परम्परा तथा (5) टैक पदों की पुनरावृत्ति आदि। यह विशेषता लाहुल की लोकगाथाओं में भी पाई जाती है।

जिस गीत या गाथा के रचयिता संदिग्ध हों तो उस के प्रमाणिक मूल पाठ की आशा करना भी लगभग व्यर्थ होगा। आज जिन गाथाओं को हम गाते और दूसरों के मुख से श्रवण करते हैं, उसे हम मौखिक परम्परा से ही ग्रहण करते हैं न कि किसी पुस्तक या पोथी से। इसलिए हम इसे मौखिक साहित्य भी कह सकते हैं। मौखिक साहित्य के बारे में हम लोग भारतवासी अपरिचित भी नहीं हैं क्योंकि पुराण कालीन भारतीय शिक्षा पद्धति में मौखिक शिक्षा को बड़ा महत्व दिया जाता था। यहां तक कि भगवान् गौतम बुद्ध के समय में भी बुद्धवचन को उन के भिक्षु संघ कण्ठस्थ किया करते थे। बुद्धवचन को लिपिबद्ध तो उन के महापरिनिर्वाण के चार सौ अठहत्तर वर्ष पश्चात् प्रथम बौद्ध संगायन के वक्त किया था। इस संदर्भ में पश्चिम के एक विद्वान सिजविक ने लिखा है कि "लोकगाथा तभी तक जीवित रह सकती है जब तक मौखिक साहित्य के रूप में वर्तमान रहे, उसे लिपिबद्ध करने का अर्थ यह होगा कि उसकी हत्या कर डालना।" उन के कहने का तात्पर्य यह था कि लोकगाथाओं को लिपिबद्ध कर देने से वह सामान्य समाज के आकर्षण से अछूता रह कर, एक निर्धारित विशिष्ट पाठक वर्ग का विषय बन जाता है और कालान्तर में उसके लुप्त हो जाने का सन्देह बना रहता है।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति

लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में पाश्चात्य विद्वानों ने विशेष चिन्तन-मनन किया है। उन के विचार और सिद्धान्त भिन्न हैं। लोकगाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उन में मतैक्य नहीं हैं। उन में प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् ए. डब्लू. श्लैगल के व्यक्तिवाद का सिद्धान्त अधिक युक्ति युक्त प्रतीत होता है। उन्होंने जर्मन के विद्वान जैकब ग्रिम के समुदायवाद सिद्धान्त का ज़ोरों से खण्डन किया है। जैकब ग्रिम का कहना था कि 'किसी भी देश के समस्त निवासी वहां की लोकगाथाओं का निर्माण करते हैं'। इस के विपरीत ए. डब्लू. श्लैगल का यह निश्चित मत था कि जिस प्रकार काव्य का रचयिता कोई ना कोई कवि अवश्य ही रहता है, इसी प्रकार लोकगाथाओं का रचयिता भी कोई ना कोई व्यक्ति ज़रूर रहा होगा। भारतीय मनीषियों की परम्परा तो यह रही है कि सामान्य लोक साहित्य को तो वे असंस्कृत और गंवार मान कर उपेक्षा कर देते रहे, और वे तो केवल मात्र देववाणी संस्कृत के परिष्कार और अभिवृद्धि में इतने व्यस्त रहे कि उनको इस ओर ध्यान

देने का कभी अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ। यह प्रवृत्ति कदाचित आज भी विद्यमान है। भारतवर्ष में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के पूर्ण रूप से लागू होने के पश्चात कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ जिन के नाम इस प्रकार है- पं. राम नरेश त्रिपाठी, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, डा. सत्येन्द्र, डा. उदय नारायण तिवारी तथा डा. सत्यव्रत सिन्हा आदि। इन विद्वानों ने लोक साहित्य और लोकगाथाओं पर खोज पूर्ण अति प्रशंसनीय कार्य किये हैं। कुल मिलकर उपर्युक्त भारतीय विद्वानों के मत में लोकगाथाओं की उत्पत्ति का स्रोत वेद और पुराण हैं। तो भी हम यह मानते हैं कि इन लोकगाथाओं का रचयिता कोई ना कोई व्यक्ति अवश्य ही रहा होगा और इस के साथ हम यह भी मानते हैं कि कुछ गाथाएं जन-समुदाय का भी प्रयास हो सकता है। सदियों से मौखिक परम्परा में रहने के कारण, हम लोग मूल रचयिता को तो भले ही भूल गए हों, परन्तु आज भी हमें इस बात की प्रतीति तो होती है की इस का रचयिता कोई न कोई व्यक्ति अवश्य ही रहा होगा, क्योंकि कोई भी कार्य, कर्त्ता के अभाव में कभी भी सम्पन्न नहीं होता, कम से कम इस सिद्धान्त को भारतीय दर्शन शास्त्र के पंडित तो मानते ही हैं।

लोकगाथा का नामकरण

लोकगाथा अंग्रेज़ी के बेलेड (ballad) शब्द का भावानुवाद है, जिस का अर्थ नृत्य करना होता है। परन्तु भारतीय परम्परा की सभी प्रकार की लोकगाथाओं के साथ नृत्य करना अनिवार्य नहीं है। लोकगाथा शब्द स्वयं भारतीय विद्वानों के बहुत बाद के मस्तिष्क की उपज है।

इस से पूर्व कथात्मक गीतों के लिये गीतकथा या कथागीत के नाम से अभिहित किया गया है, जिसमें नृत्य का तनिक भी आभास नहीं मिलता। लोककथा शब्द नये रूप से गढ़ने वाले सर्वप्रथम डा. कृष्ण देव उपाध्याय हैं जिन्होंने इसे अपने 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन' नामक प्रबन्ध (थीसिस) में अभिहित किया था। इस की नवीनता इस से भी सिद्ध होती है कि पुराने ढंग के कोशों में प्रयास पूर्वक खोजने पर भी यह शब्द कभी कभार ही प्राप्त होता है। परन्तु अकेले 'गाथा' शब्द की प्राचीनता के लिए किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए। विष्णु पुराण में 'गाथा' का उल्लेख आता है। बौद्धों का पाली साहित्य गाथाओं से भरा पड़ा है, जैसे- शेर गाथा, शेरी गाथा, तेलकटाह गाथा और मंगलसुत गाथा आदि। भोजपुरी बगैरा उत्तर भारत की बोल-चाल की भाषा में भी गाथा शब्द का प्रयोग प्रचुर होता है। किसी को आप बीती बात सुनानी होती है तो वह उसे गाथा से अभिहित करता है। जैसे, का सुनाऊं आपनी गाथा तुहारको।

लोकगाथाओं का विवेचन

हम यह प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं कि लोकगाथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का नितांत अभाव रहता है, अपितु उनमें तो लोक जीवन का सम्पूर्ण वर्णन ही निहित होता है। इसलिये लोकगाथाओं को यदि हम लोग कविता और कहानियों की तरह बांचें तो उस में तनिक भी रस या आनन्द प्राप्त नहीं होगा, वरन उसे तो गायकों के मुख से श्रवण करने में ही आनन्द आता है। लोकगाथाओं में संगीत तो अवश्य ही रहता है परन्तु उस की संगीत-लिपि नहीं होती। लोकगाथा संगीतात्मक होने के कारण ही लोक प्रियता को प्राप्त कर सकी है, अन्यथा लोग उसे कब का भूल चुके होते।

लाहुल की लोकगाथाओं के अध्ययन करने से हमें इन बातों का पता चलता है कि (1) यहां की लोकगाथाओं में वीर कथात्मक गाथाओं का सर्वथा अभाव और (2) आकार में छोटे और कथानक की कमी। प्रेम-कथात्मक तथा संस्कार-कथात्मक गाथा यहां पर सर्वत्र पाई जाती है। जिस प्रकार लोकगाथाओं के रचयिता का हमें पता नहीं चलता, उसी प्रकार गाहरवादी की लोकगाथाओं के नामकरण और उन की भाषा के विषय में भी अभी तक सन्देह ही बना हुआ है, क्योंकि गाहरवादी में पुनन्पा समुदाय की भाषा गाहरी है परन्तु यहां गायी जाने वाली लोकगाथाओं की भाषा शुद्ध तिब्बती है। भले ही उन में कुछ स्थानीय शब्द जुड़ गये हों, जिन्हें गायकों ने स्वयं अपनी ओर से जोड़ दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। ऐसा संभव भी है, क्योंकि कुल्लू, स्पीति तथा किनौर के गायकों को हम आज भी प्रत्यक्ष रूप से यह देखते हैं कि वे एक ही गीत या गाथा को गाते और अपनी ओर से कुछ शब्द या कड़ियां जोड़ते लम्बे समय तक गाते ही जाते हैं। कभी-कभी तो वे लोग एक ही गीत या गाथा को लगातार तीन या चार घंटे तक गाते हैं।

गाहरवादी के पुनन्पा समुदाय के लोग, लोकगाथा को 'ग्रेग्स' के नाम से पुकारते हैं। यह ग्रेग्स न तो भोजपुरी लोरिकायन या आल्हा तथा बंगला भाषा में प्रचलित गोपीचन्देर गीत की तरह नायक के नाम से सम्बन्धित है और न ही महाराष्ट्र के पंवाड़ा नामक लोकगाथा की तरह शौर्य वर्णनात्मक गाथा है। ग्रेग्स शब्द ही न तो तिब्बती है और न ही गाहरी या लाहुल की अन्य भाषाओं का शब्द। हो सकता है कि प्राचीन समय में यह कोई सार्थक शब्द रहा हो परन्तु वर्तमान गाहरी और तिब्बती दोनों की दृष्टि से इस का कोई अर्थ नहीं लगता तथा इस शब्द के धातु-प्रत्यय आदि का कुछ भी पता नहीं चलता। 'स्रवा ल्ह केद्' नामक यह ग्रेग्स (लोकगाथा) गाहरवादी के करदंग गांव के गायकों द्वारा गायी जाने वाली प्रेम कथात्मक गाथा है, जिस में प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहता है:

स्रवा ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
चो ङई द वा सां डा २ ।।
वुम्रा ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
ग्यल चां लोद् मा डा २ ।।
चान् ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
का खई ना रो डा २ ।।
ञान् ल्ह कैद् प्रेर ना २ ।।
जांस की पा तेप डा २ ।।
नखूं ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
जांस की पू री डा २ ।।
छेम्स ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
दूङ छुङ डिग् पा डा २ ।।

कोग्मा ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
ग्यल छेन डिल् बू डा २ ।।
चे ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
पद् मा दब् ग्यद् डा २ ।।
पुम्पा ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
सिङ छेन गिङ वा डा २ ।।
केद्पा ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
दोरजे डिल् बू डा २ ।।
पिदमो ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
दूङ गी मे लोङ डा २ ।।
कङपा ल्ह केद् प्रेर ना २ ।।
पद् मा दब् ग्यद् डा २ ।।

गांव से दूर ओर कुछ ही हाथ चौड़े सीढ़ीनुमा हरे खेतों में काम कर रही, अत्यन्त लज्जाशील परन्तु सयानी किसान बाला मन ही मन कुछ गुदगुदी लिये अपने प्रेमी का स्मरण कर ही रही थी कि अचानक उस का माशूक प्रेम से उद्विग्न हो उस के सामने आकर कहता है

हे देवी, मैं तुम पर इतना मुग्ध हूं कि मुझे तुम्हारा ललाट पूर्ण चन्द्रमा सा दिखाई देता है और तुम्हारा जूड़ा, बेली (weeping willow) की डाल सा।

इस तरह वह अपनी प्रेयसी का सर्वांग उपमा युक्त वर्णन करते हुए आगे कहता है कि तुम्हारी आंख तो क, ख वर्णमालाओं पर लगने वाली ओ' की मात्रा सी है। कर्ण ताम्बे की तश्तरी जैसे हैं और नासिका ताम्बे की नलिका सी प्रतीत होती है। तुम्हारे दाँत छोटे छोटे शंखों की पंक्ति जैसे और गर्दन बड़ी घंटी की सी है। जिह्वा अष्ट दल पद्म सी, कन्धा सिंह राज की अंगड़ाई जैसा और कटि वज्र (एक तांत्रिक यंत्र) का सा है। तुम्हारा घुटना शंख का दर्पण सा और पाद पद्मदल सा शोभायमान है।

लाहुल की लोकगाथाओं की विशेषता

लाहुल की लोकगाथाओं और लोकगीतों की विशेषता यह है कि लोक गीतों को यहां कोई भी रसिक नर-नारी कभी भी और कहीं भी गा लेता है। उन में वाद्ययंत्रों का भी प्रयोग होता है और नृत्य भी। परन्तु लोकगाथा विशेष पर्वों और संस्कारों के समय ही गाई जाती है। इस में वाद्य का होना अनिवार्य नहीं है। लोकगाथाओं के साथ यहां नृत्य तो कभी होता ही नहीं, यहां तक कि इस के गायक भी पुरुष वर्ग ही होते हैं। ग्रेग्स (लोकगाथा) को यहां के लोग देवताओं का आशीर्वचन ही मानते हैं और बड़े प्रेमपूर्वक श्रवण करते हैं। गायक स्वयं लोकगाथाओं को अत्यन्त पवित्र भाव से देखते हैं और विधिपूर्वक गाते हैं। यहां पर इसके परम्परागत गायक तो नहीं होते अतः जिस ने जो सीखा वही प्रामाणिक है। इस प्रकार इस में कुछ नये-नये पुट जुड़ते जाएं तो आश्चर्य नहीं। इस सम्बन्ध में 'दी इंगलिश बैलेड' के प्रसिद्ध लेखक राबर्ट ग्रेक्स का कहना है कि किसी भी विशिष्ट गाथा का कोई भी वास्तविक और शुद्ध पाठ नहीं होता। गायक अपनी इच्छानुसार उस में कुछ परिवर्तन करते ही रहते हैं। इसलिए किसी भी गाथा को शुद्ध नहीं माना जा सकता।

यह दूसरी संस्कारात्मक गाथा पुत्र के जन्मोत्सव और कन्या की मंगनी के समय वर पक्ष के लोग गाते हैं। इस का नाम 'थोद् ग्रेग्स' है।

थोवा री सूम से रु २ ।।
गोद् पो ची ला दिङ २ ।।
मवा लूङ सूम दो रु २ ।।
शा वा यू मो ङा २ ।।
शवा यू मो मेद् क्यां २ ।।
गोद् पो ची ला दिङ २ ।।
शवा यू मो योद् क्यां २ ।।
गोद् पो दिङ यिन् ङा २ ।।
मवा लूङ सूम दो रु २ ।।
शां खू ङू यिन् ङा २ ।।
लुगू डो मो मेद् क्यां २ ।।
शां खू ची ला ङू २ ।।
लुगू डो मो योद् क्यां २ ।।
शां खू ङू यिन् ङा २ ।।
ग्यलबू वुई थोद् स्री वइ २ ।।
सू दां सू यी शे २ ।।

ग्यलबू वुई थोद् स्री वइ २ ।।
याब् दां यूम् गी शे २ ।।
यब दां युम् गी शे वइ २ ।।
स्रिनन् ला मन् छू ज़ोद् ।
मनन् ला डिन् गी ज़ोद् ।
स्रोलो सेर थोद् स्री वइ २ ।।
सू दां सू यी शे २ ।।
स्रोलो सेर थोद् स्री वइ २ ।।
डां मा मर गी शे २ ।।
डांमा मर गी शे वइ २ ।।
स्रिनन् ला मन् छू ज़ोद् २ ।।
मनन् ला डिन् गी ज़ोद् ।।
ञलो युई थोद् स्री वई २ ।।
सू दां सू यी शे २ ।।
ञलो युई थोद् स्री वई २ ।।
शग् मा मर गी शे २ ।।

शग् मा मर गी शे वइ २ ।।
स्रिनन् ला मन् छू ज़ोद् २ ।।
मनन् ला डिन् गी ज़ोद् ।।
चंमा बल थोद् स्री वइ २ ।।
सू दां सू यी शे २ ।।
चंमा बल थोद् स्री वइ २ ।।
छू मीग् मर गी शे २ ।।
छुमीग मर गी शे वइ २ ।।
स्रिनन् ला मन् छू ज़ोद् ।।
मनन् ला डिन् गी ज़ोद् ।।
ओंबूग् दर थोद् स्री वइ २ ।।
सू दां सू यी शे २ ।।
ओंबूग् दर थोद् स्री वइ २ ।।
शां शां ङोन मोई शे २ ।।
शां शां ङोन मोई शे वइ २ ।।
स्रिनन् ला मन् छू ज़ोद् ।।
मनन् ला डिन् गी ज़ोद् ।।
(ओं माऽहूँ युल्ला तेते खेनू!)

यह गाथा गायक कथोपकथन में गाता है। इस की कुछ कड़ियों का अनुवाद इस प्रकार है-

हे गृहपति, यह तीन चोटी वाले उत्तुंग पर्वत के शिखर पर गिद्ध क्यों मंडरा रहा है? क्योंकि ठीक उस के नीचे घाटी में हिरणी बैठी हुई है। यदि वहां पर हिरणी नहीं होती तो गिद्ध क्योंकर मंडराता। वहां पर हिरणी के विद्यमान होने की वजह से ही तो गिद्ध मंडरा रहा है।

हे गृहपति, इस गम्भीर घाटी में भेड़िया भौंक रहा है। यदि वहां पर मेमना नहीं होता तो भेड़िया क्योंकर भौंकता? यहां पर मेमना के विद्यमान होने की वजह से ही तो यह भेड़िया भौंक रहा है।

हे गृहपति, कौन-कौन से लोग राज-पुत्र की पगड़ी बांधना जानते हैं? राज-पुत्र की पगड़ी बांधने में तो उन के माता-पिता ही दक्ष हैं। अतः हम लोगों को, उन दोनों की कल्याणकारक कार्यदक्षता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए।

लाहुल की लोकगाथाओं के गायक दो दलों में विभक्त होकर गाथा को प्रारम्भ करते हैं। एक दल पहले टेक-पद से शुरू करके दूसरे टेक-पद पर गाथा (श्लोक) समाप्त करता है, तो दूसरा दल उसी टेक-पद से आरम्भ करके आगे की गाथा गाता है।

गाथाओं को जितनी बार दुहराया जाए उस में उतना ही रस आता है। टेक-पदों की आवृत्ति से गाथा अत्यधिक संगीतात्मक हो जाती है। जिस से श्रोताओं को श्रवण करने में बड़ा आनन्द आता है।

यह तीसरी गाथा 'मौन् लम् ग्रेग्स' में योंईं लइला, शे मोन् लम् ग्यांग ने जिग् और योंईं दे सूम आदि टेक-पद हैं।

योंईं लइला कू खार थोर बू देर ।।
शे कू खार थोर बू देर २ ।।
योंईं डा दां जग् पा मेद् पइ ।।
शे मोन् लाम् ग्यां ने ज़िग् २ ।।
योंईं लइ ला फा मा डा वइ ।।
शे फा मा याब यूम देर २ ।।
योंईं ङुन जी गोद् छाग मेद् पइ।।
शे मोन् लाम् ग्यां ने ज़िग् २ ।।
योंईं लइ ला मा जीङ डा वइ ।।
शे मा जीङ ग्य दोर देर २ ।।
योंईं सद् दां सेर वा मेद् पइ ।।
शे मोन् लाम् ग्यां ने ज़िग् २ ।।
योंईं दे सूम् सेर दां डा वइ ।।
शे गूङ ला ठी चीग् बुम २ ।।
योंईं ङन सोङ थिल ने डेन् पइ ।।
शे चोम् दान शग् दां चिग् २ ।।
योंईं थो री लम ना डेन पइ ।
शे लो पोन् जां दां नि २ ।।
योंईं छे दी छी मा जल वइ ।।
शे दोर जे पून दाँ सूम २ ।।
योंईं दे सूम सेर दाँ डा वइ ।।
शे गूङ ला ठी चीग् बुम २ ।।
योंईं लुइ ला आ लोङ नम् पइ ।।
शे आ जां याब दां चिग् २ ।।
योंईं मा जो ङर मो सल वइ ।।
शे आ जां युम् दां ञि २ ।।
योंईं जिम् छू ङ र छू सल वइ ।।
शे बू स्रीङ जांग दां सुम २ ।।
योंईं दे सूम सेर दां डा वइ ।।
शे गूङ ला ठी चीग् बुम २ ।।
योंईं रिन् छेन् स्रोग ला फान पइ ।।
शे मा खां जांग दां चिग् २ ।।
योंईं लुइ ला दर चांग नाम पइ ।।
शे जी माद् जांग दां ञि २ ।।
योंईं ञिन् सूम् छन सूम छुग् पइ ।।
शे गो खी जांग दां सुम २ ।।
योंईं दे सूम सेर दां डा वइ ।।
शे गूङ ला ठी चीग् बुम २ ।।
योंईं पुङ दां लाग् ना डेन पइ ।।
शे फइ पून जांग दां चिग् २ ।।
योंईं गेन् मेद् थुर मेद् ग्यूग पइ ।।
शे की लींग जांग दां ञि २ ।।
योंईं डा दे दां खा रुई थोग् तु ।।
शे फुब चूङ जांग दां सूम २ ।।
योंईं दे सूम सेर दां डा वइ ।।
शे गूङ ला ठी चीग् बुम २ ।।

सुमिरन

लाहुल के गाहरवादी के निवासी शत् प्रतिशत् बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। इन के खान-पान और रीति-रिवाज़ सब बौद्धपरम्परा के होते हुये भी हिन्दू धर्म के संस्कारों से भी काफी प्रभावित हैं। एक सच्चे बौद्ध के लिये, जिस ने 'बुद्धं शरणं गच्छामि' कह कर एक बार बुद्ध के शरण ग्रहण कर ली तो उस के पश्चात् अन्य लौकिक देवी-देवताओं की पूजा-वन्दना करना उसे वर्जित होता है। परन्तु यहां पर लोकगाथा गाते वक्त गाथा और आयोजित संस्कार को निर्विघ्न सम्पन्न होने के लिए विशेष कर ग्राम-देवता का सुमिरन कर पूजा-वन्दना की जाती है। उस वक्त देवदार वृक्ष की एक छोटी सी डाली, पुष्प तथा जौ के दाने जो मक्खन में स्निग्ध किये होते हैं, अग्नि देवता को हवि दिए जाते हैं। उस के पश्चात् 'ओ मा हूँ युल्ला तेते खेन' यह मंत्र जप कर पुनः ग्राम देवता का सुमिरण कर गायक गाथा प्रारम्भ करता है। इस में क्या ऐतिहासिक तथ्य मौजूद हैं यह तो बाद के खोज का विषय होगा, परन्तु सांस्कृतिक रूप से अविकसित इन पर्वतीय प्रदेशों में हिन्दू और बौद्ध संस्कारों का सम्मिश्रण कोई कौतूहल की बात नहीं है।

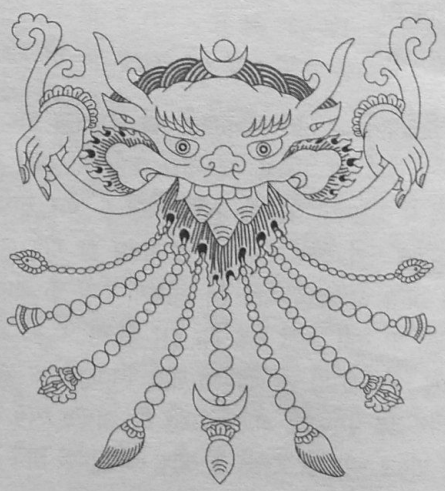

हिमालय एक अनुगूँज कक्ष है

कर्नल प्रेम
खा छेन ज़ोंग्डा वाले

बचपन में पहाड़ों को मैं विस्मय, भय और श्रद्धा के साथ देखता था। लाहुल में हमारे लिए ये चट्टानों तथा चिरन्तन हिम और यक के आश्चर्यजनक ढेर पवित्र माने जाते हैं-- देवी देवताओं के ये आवास अपवित्र नहीं किये जाते। हिमालय एक नैसर्गिक कर्म क्षेत्र रहा है, जहां पर जीवन और मृत्यु की सीमाओं पर खेल कर उस उन्मुक्तता को पाया था, जो मेरे लिए उतनी ही आवश्यक थी, जितनी कि मेरी सांसें। हिमालय में अपने आप को मैं और अधिक सुनते हुए महसूस करता हूं। यहां की नीरवता को और अधिक सुन पाता हूं। ऐसे ऊंचे स्थानों पर उत्तरोत्तर शान्तचित्त होता जाता हूं, क्योंकि मेरे अन्तर की आवाज़ मुझ से बतियाने लगती है। ऐसे उच्च साहसिक-कर्म के दोरान बहुधा मैं अपनी ही आवाज़ को सुनने की अनुकांक्षा करता हूं।

हिमालय इशारे से बुलाता है--- खुद को नीरस संसार से ऊपर उठाने को कहता है। खड़े हो जाने और आशातीत को प्राप्त करने को कहता है--- क्योंकि उन के शिखरों पर ही मानवता की ऊर्जा निवास करती है। प्रेरणादायी मनीषियों ने स्मरणातीत काल से पार्थिव सुखों के पार पहुँचने का उद्यम किया है।

और अजेय को जीतना, पर्वतों के नयनाभिराम दृश्य शक्ति, अभय और जीवन की पवित्रता के उच्च आदर्शों के प्रतीक हैं। हिमालय एक अजूबा है, जो अपने प्रकटीकरण को प्रस्तुत रहता है।

"जब आप किसी महान उदेश्य से प्रेरित होते हैं, कोई असाधारण उद्यम, आप के सारे विचार, बन्धनों को तोड़ देते हैं- आप का मन सीमाओं के पार निकल जाता है, आप की चेतना प्रत्येक दिशा में फैल जाती है और आप अपने को एक नूतन, महान और आश्चर्यजनक संसार में पाते हैं। सुप्त शक्तियां, क्षमताएं और प्रतिभाएं जीवन्त हो जाती हैं..." पतंजलि।

हिमालय में कुछ पर्वत दूसरों की अपेक्षा अधिक पवित्र हैं, हज़ारों श्रद्धालू सदियों से उन की लम्बी और कठिन यात्राएं करते हैं। कैलाश हिन्दू और बौद्ध दोनों के लिए पवित्र है। लाहुल के शासक देवता राजा घेपङ के आवास घेपङ शिखर को सदा सम्मान दिया गया और पुश्तों से पूजा गया है। हमारे लोगों का विश्वास है कि इन पर्वतों पर चढ़ना इन की पवित्रता का अतिक्रमण है। एन. डी. और मैं सन 1977 में खा छेन ज़ोंग्डा के उत्तर पूर्वी रिज के साथ-साथ आरोहण करने के दौरान उच्चतम बिन्दु से छह फीट नीचे रुक गए थे। यह सिक्किम-वासियों की भावनाओं को आहत न करने और उस शिखर के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए था जिसे सोया हुआ बुद्ध भी कहा जाता है और जो सिक्किम वासियों का रक्षक देवता है। मुझे आशा है वे लोग जिन्हें पर्वतों से सच्चा प्रेम है, सम्मान और श्रद्धा के साथ उन के पास जाना सीखेंगे।

हिमालय एक अनुगूँज कक्ष है, मेरे चार दशकों से अधिक पर्वतारोहण तथा हिमालय और पूर्वी कराकोरम के समूचे साहसिक

कर्म की मूर्त पूंजी है। यह उन सब के लिए श्रद्धांजलि है जिन की बदौलत मेरे आरोहण अब मेरे हृदय में गुंजायमान हैं, मेरी याद्दाश्त -- वो नेतागण, भारतीय फौज, भारतीय पर्वतारोहण फाउंडेशन, सदस्य, कर्मचारी, शेरपा, भारवाहक जैसे- घोड़े-खच्चर, याक और भेड़-बकरों को भी नहीं भुलाया जा सकता, जो हमारे बोझ को आधार शिविरों तक पहुंचाते थे, और खास तौर पर वे जो स्वयं अब पर्वत का हिस्सा बन गए हैं- जिन्होंने खुद से ज़्यादा प्यार हमें दिया था। और सब के ऊपर, एक अपवाद तुल्य उच्च साहसिक कर्म से जुड़े मेरे ये बहुत ही वैयक्तिक विचार और स्मृतियां हैं। ऐसे साहसिक कार्यों में शामिल होना मेरे लिए सौभाग्य की बात थी।

विश्रान्ति, मनोविनोद और यहां तक कि उच्च साहसिक कर्म के लिए यात्रा करना एक अच्छा अनुभव होता है, लेकिन इस में और बड़े आयाम जोड़ता है-- अन्वेषण। ऐसा विशेषकर तब होता है जब खोज मुख्यतः अपनी कल्पना, योजना और प्रयास के फलस्वरूप सम्पन्न होती है, और सब से ऊपर तो यह कि जब सिर्फ अपने दो पैरों का प्रयोग करते हुए इसे पूरा किया जाता है। वह मेरे लिए सदैव "उत्कृष्ट अन्वेषण" रहा है और आज भी है।

सप्ताहों तक, खोज और चढ़ाई की हमारी उल्लासकारी संवेदनाएं पृथक्करण की गहन प्रतीति से और बढ़ जाती हैं, वैसे, हमारे खा छेन ज़ोग्डा आरोहण के कुछ ही बर्षों बाद उपग्रह संचार, सेल्यूलर फोन तथा दूसरी तकनीकियों ने बाहरी विश्व के साथ प्रायः निरन्तर सम्पर्क को संभव बना दिया था। निस्संदेह यह आरोही को आपात परिस्थितियों में त्वरित अनुक्रिया प्रदान करता है, लेकिन स्वायतत्ता पूर्वक कार्य करने के विश्वास तथा संतुष्टि की कीमत पर। अब आरोही यह जानने के लिए कि बच्चे क्या कर रहे हैं- और यहां तक कि अपने पालतू जानवरों को 'हेल्लो' कहने के लिए भी आधार गृह से लगातार संपर्क में रह सकते हैं। तकनीकियों में ऐसी प्रगति साहसिक कर्म तथा चुनौती की मानवीय वृत्ति पर त्रासिक आघात को परिलक्षित करती है। हम ने मानवीय विदग्धता को तकनीकी कौशल से स्थानापन्न कर दिया है। उन पर्वतारोहियों के लिए, जिन्होंने दूसरों के पद चिन्हों, लगे लगाये रस्सियों का अनुगमन किया है, कुछ भी विलक्षण नहीं माना जा सकता। मेरे सभी अभियानों में, यह भाव मन में होता ही नहीं था कि आगे क्या होगा, और मैं आसानी से पीछे मुड़ नहीं सकता था। बहुत बार विवेक और भय पीछे हटने को कहते, लेकिन एक पर्वतारोही की सहजवृत्ति मुझे आगे धकेल ले जाती। मेरे सभी अभियानों में कई ऐसे उद्रेकपूर्ण क्षण आये- निराशाजनक रूप से खो जाने का भाव, किसी अज्ञात के गर्त में होने का भाव और अपने सिवा किसी भी आश्रय के न होने का एहसास। कई सप्ताहों तक, पृथक्करण की वह गहन प्रतीति अन्वेषण की मेरी हर्षोद्रेक पूर्ण सम्वेदनाओं को संवर्धित कर के रखती थी।

जो लोग कुछ समय तक यहां आते हैं, हिमालय उन पर मोहिनी सी छोड़ता है, वे और अधिक समय के लिए ठहर जाते हैं और बार-बार लौट कर आते हैं। हम में से बहुतों को एक स्वप्न लोक की आवश्यकता या अभिलाषा होगी, हिमालय निश्चय ही बिना किसी प्रतिद्वन्द्वी के हमें यह दृश्यबन्ध प्रस्तुत करता है।

मुझे मालूम है मेरे पर्वत दूसरों को मात्र पहाड़ी लग सकते हैं, और मुझे स्वीकार है। मैं सच्चाई से जीना चाहता हूं, आज मुझे अपने पर्वतों पर चढ़ना होगा और अपनी आत्मा के अज्ञात हिस्से में जाने का जोखिम लेना होगा- अपने हिमालय के शिखरों का आरोहण करना होगा।

आरम्भ से ही हिमालयी साहसिक कर्म, अन्वेषण और खोज के प्रति जिस से मैं आकृष्ट हुआ वह शुद्ध संयोग ही था। अब शानदार सत्तर वर्ष की अवस्था पार करने के बाद, यह महसूस करते हुए मुझे कोई आश्चर्य नहीं है कि मैंने साहसिक कर्म में अपना सर्वश्रेष्ठ पा लिया है, कि इसे परिपूर्णता के साथ किया गया है और इस की बराबरी कभी नहीं की जा सकती। इस अनुभूति ने उस अन्तिम दृश्य पर पर्दा गिरा दिया है जिसे मैं अपने जीवन का अपरिवर्तनीय हिस्सा समझता था।

सामान्यतः आरोहण की ललक निश्चय ही कम हुई है और विगत के अनेक वर्ष हिमालयी प्रयोजनों के ललचाव से मुक्त रहे हैं। मेरे जीवन के हिमालयी सोपान (प्रकरण) का लगता है अन्त हो गया है। यदि ऐसा है, तो फिर क्यों अपनी छड़ी के साथ सामान्य पदयात्रा का आनन्द लेते हुए और कई बार अपने दो पोतों के साथ कुल्लू और लाहुल की मनमोहक वादियों में चहल कदमी करते हुए, न केवल रोहतांग दर्रे की चमाचम बर्फ में से अपने सीधे-लयात्मक आरोहण को सुनता हूं अपितु अन्य हिमालयी अनुगूँजों को भी पोसता हूं। इस पूरे अन्तराल के दोरान मैंने अपने को उस अर्थ के थोड़ा और निकट पाया जिसे मैं प्रत्येक नये दिन, प्रत्येक नये आरोहण, ठोंके गये हर कदम और हीरे के समान चमचमाते बर्फ से ढकी ढलानों पर ऊपर या नीचे की ओर लिए गए प्रत्येक निर्बाध घुमाव के साथ खोज रहा था।

जैसा कि परम पावन दलाई लामा जी कहते हैं, "एक अच्छा सम्मानजनक जीवन जियो, तब, जब तुम बूढ़े हो जाओगे और पीछे की सोचोगे, तो तुम दूसरी बार इस का आनन्द ले पाओगे!" यह गुंजायमान होता है!! और हिमालय तथा कराकोरम के ऊंचे स्थानों में कुछ अधिक ही ऐसा होता है। अत्यन्त ही तृप्तिदायक होता है इन अनुगूँऽऽऽजोंऽऽऽ के साथ जीना!!!

अनुवाद : सतीश लोप्पा
वरि वाले

लाहुल-स्पीति और कुल्लू हिमालय के सिकुड़ते ज़रिम

ज़रिम लाहुली भाषा में ग्लेशियर (Glacier) को कहा जाता है और कुल्लुई में ज़रिऊं

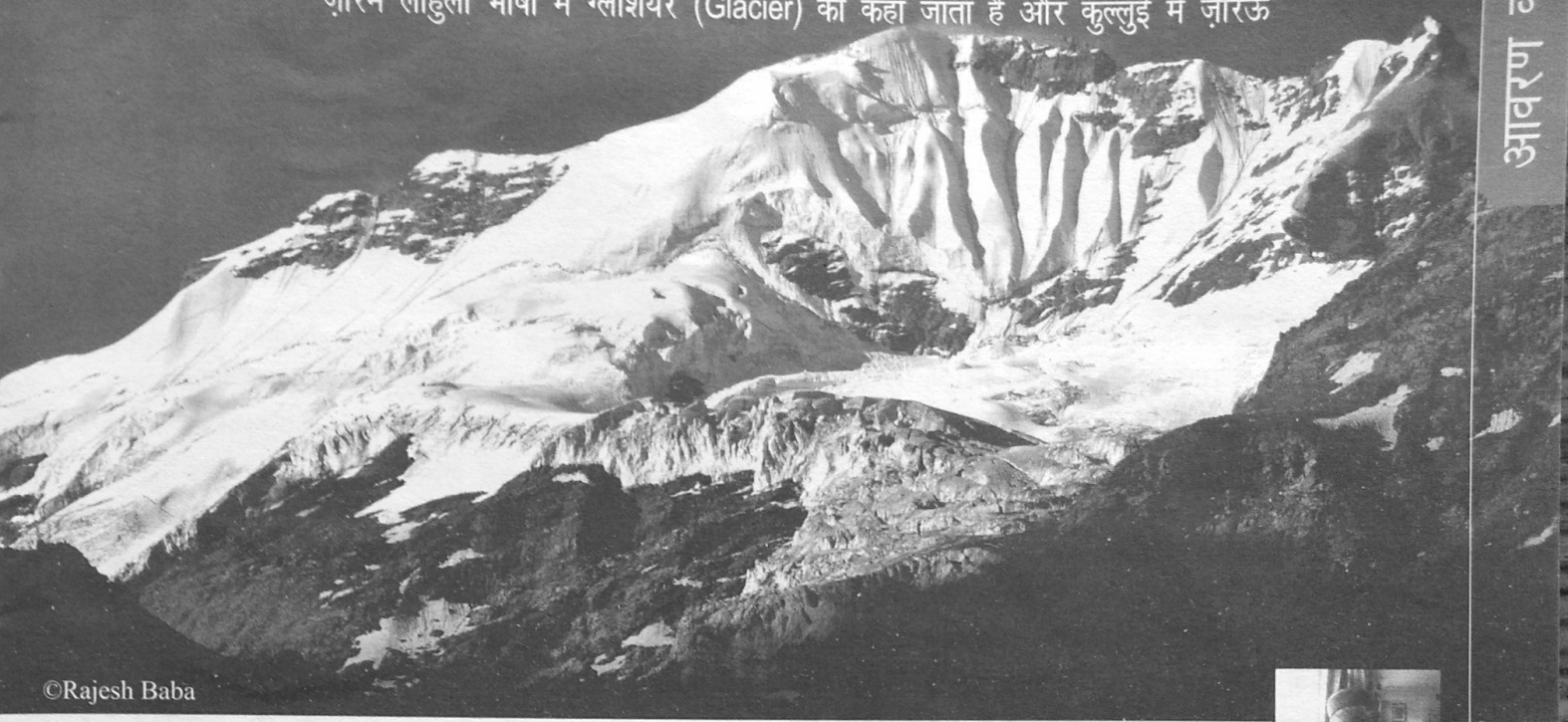

©Rajesh Baba

छेरिङ दोर्जे

"धरती पर से आर्द्रता की मात्रा में तबदीली नहीं आई है जिस जल का करोड़ों वर्ष पूर्व में विशालकाय डायनासोरों ने सेवन किया था यही जल वर्षा बनकर पृथ्वी पर गिरता है। क्या यह संसार में अत्यधिक बढ़ते जनसैलाव के लिए पर्याप्त होगा?"

दस हज़ार वर्ष से अधिक का समय गुज़रे लाहुल-स्पीति और कुल्लू की घाटियां ज़रिम और हिम नदियों से भरपूर एक विस्तृत हिम प्रदेश का विश्वचित्र प्रस्तुत कर रहा था। प्रायः इन हिमनदियों और ज़रिमों ने ही वहां की गगनचुम्बी चोटियों को तराशा है। कुछेक विशेष चोटियों के नाम हैं घेपङगो, शिगरी, गङयोगमा, कुल्लूपोमारी, दिङकरमो, मुलकीला, मेनथोसा, उड़गोसगो, क्यरक्योग्स, गुसकोण, बोलूनाग, नीलगाहर, शिकरबे-मुखरबे, हनुमान टिब्बा, देऊटिब्बा, इन्द्रासन, मनालसू, पिन पार्वती गङ, शीलागङ, मणिरङ-रोङतोङ गङ, ताबोछू इत्यादि...। ये समस्त चोटियां 18000 फुट से अधिक ऊंची और ज़रिम के मोटे मोटे परतों से ढकी हैं।

विगत हज़ारों वर्षों तक हिमालय क्षेत्र विशालतम हिमखण्डों का अथाह भण्डार रहा है। संसार में उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के पश्चात हिमालय में ही सर्वाधिक हिमखण्डों के भण्डार मौजूद रहे हैं। अतः हिमालय को तीसरा ध्रुव कहा जाता है। घाटियों में कछारी भूमि की मोटी-मोटी परतें और विशाल ज़रिम मलबा के रीढ़ियों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि गत अन्तिम हिमयुग में इन घाटियों में अत्यधिक वर्षा और हिमपात के दौर रहे होंगे। विस्मयकारी ज़रिम भण्डारों और श्वेत चमकते हिमाच्छादित जिन चोटियों को यहां देख रहे हैं वे अन्तिम हिमयुग के अवशेष मात्र ही हैं।

यद्यपि हिमयुग में समस्त लाहुल क्षेत्र एक विशाल हिमघाटी में परिवर्तित था, तथापि दोनों ओर उभरी हुई पर्वत मालाओं के कारण एक विशाल घाटी की रूपरेखा स्पष्ट दिख रही थी। वर्तमान समय की भान्ति घाटी की ढलान बारालाचा गिरिपिण्ड से पश्चिम की ओर होने के कारण महान हिमनद भी ढलान के साथ-साथ दो भागों में बंट कर धीरे-धीरे खिसकती गई। ये दोनों हिमनद तन्दी के स्थान पर फिर एक दूसरे से मिलकर एक महा हिमनद में बदल गए। यह वर्तमान में असिक्नी अथवा चनाब नदी बन गई।

वर्तमान में लाहुल की बीसियों सकारथ ज़रिम जमाव, उच्च चन्द्राघाटी में बारालाचा गिरिपिंड से खोकसर तक पर्वतों की चोटियों और बगल घाटियों के भीतरी भागों में अवस्थित हैं। इनमें विख्यात शिगरी समूह ज़रिम जमाव लगभग 22 कि.मी. लम्बी बलखाती आकर्षक हिमनद है जो चन्द्रानदी के तट तक पहुंचती है। यह घाटी वेली ऑफ ग्लेशियर्ज़ (Valley of Glaciers) के नाम से भी जानी जाती है। इसके अतिरिक्त चन्द विख्यात ज़रिमों के नाम हैं: मुलकीला, दिङ करमो, गङ गोङमा, गङ योगमा, कुल्लू पोमारी, शिकरबे-मुखरबे, गेपङगो, नीलगाहर, गुसकोण, गंग्सतङ, क्यरक्योग्स, लेडी ऑफ केलंग, तिङ-गलफू, उड़गोसगो, मेनथोसा, फोबरङ इत्यादि।

कुल्लू और लाहुल के मध्य पीरपंजाल पर्वतमाला के ऊपर उठने के कारण दो स्पष्ट घाटियां बन गई हैं। यहां के ज़रिमों ने विपाशा अथवा ब्यास नदी को उद्गत किया है परन्तु अंतिम हिमयुग में नदी का उद्गम स्थल निम्न कुल्लू में लारजी गर्त के आसपास रहा होगा। वर्तमान में कुल्लू घाटी की कुछ विख्यात ज़रिमों के नाम ये हैं- हनुमान टिब्बा, इन्द्रासन, देऊटिब्बा, इन्द्रकील, हेमकूट, मनालसू, पिन पार्वती जोत इत्यादि। इसके अतिरिक्त सोलंग नाला, रोहतांग जोत, डोभी नाला, लग नाला, मनीकर्ण नाला तथा मलाना नाला के बगल घाटियों में अत्याधिक ज़रिम जमाव विद्यमान हैं।

स्पीति घाटी की भौगोलिक संरचना पश्चिमी तिब्बत अथवा जङ-थङ पठार का छितराता बाह्य भूभाग है। यहां करोड़ों वर्ष पूर्व के समुद्री जीवों के जीवाश्म मिलते हैं। ये जीवाश्म प्राचीन टेथिस सागर के जीवों के हैं। हिमालय पर्वत के ऊपर उठने के कारण प्राचीन टेथिस सागर खुश्क हो गया है। यह घाटी वृहत् हिमालयी और ज़ंस्कर पर्वत श्रेणी के मध्य एक उच्च मरु भूमि घाटी है। घाटी न्यूनवृष्टि क्षेत्र के अन्तर्गत होने के कारण वर्षा कम गिरती है। अतः यहां के प्राचीन ज़रिम मटमैले और भूरी रंगत लिए कंकर पत्थरों के ढेरियों में बदल रहे हैं। यह एक भयानक प्राकृतिक स्थिति के आगमन का लक्षण लगता है। यहां के महत्वपूर्ण ज़रिमों के नाम हैं-- लुङगुनफु, शितीखर, कालीखर, हलगङ, राङतोङ-गङ, शीलागङ, गङ-ञिलदा, पारेगङ, पिन कु, भावागङ, मानेरङ-गङ, ताबोफु, क्योटोफू इत्यादि। घाटी के मध्य पितिछु अथवा स्पीति नदी बहती है। यह नदी सतलुज नदी की एक महत्वपूर्ण शाखा नदी है। संभवतः अंतिम हिमयुग के समय पर घाटी एक विशाल हिम परिवर्तित जलाशय रहा होगा।

संभवतः अंतिम हिमयुग के समय कुल्लू घाटी में हिमरहित नमदार स्थानों में कुछ शीत रोधक झाड़ियां और पौधे पैदा हुए होंगे परन्तु लाहुल और स्पीति में ऐसे पौधों के होने की संभावनाएं कम ही दिखती हैं। अभी मानव गतिविधियों को एक लम्बी अवधि, अंतिम लोहयुग तक की प्रतीक्षा करनी होगी।

जीवाश्म

पूर्व पाषाण काल में ये घाटियां पूर्णतः विकसित घाटियों के रूप में देखे जाते थे। नदी-नाले और झरने नियत रूप से बहने लगे होंगे। पहाड़ों के ढलान कई प्रकार के वृक्ष, झाड़ियों और हरे भरे पौधों से ढक गए होंगे। वर्ष का अधिकतर समय मखमली घास और रंग बिरंगे वन पुष्पों से सुसज्जित रहते।

संभवतः नव पाषाण काल (Neolithic) में कुछ घुमन्तू पशुपालक समुदाय प्रथम बार अपने पशुधन के साथ कुल्लू-लाहुल की घाटियों में हिमालयी पर्वतपाद की ओर से दाखिल हुए होंगे। परन्तु घुमन्तू समुदाय केवल ग्रीष्म काल में पशुधन को चरा कर वापिस निम्न स्थानों के शीतकालीन चरागाहों में चले जाते। वर्तमान में गद्दी और अन्य पशुपालक समुदाय इस प्रवसनक्रम को अपनाए हुए हैं। इस प्रकार घुमन्तू जीवन पद्धति को अपनाए इन समुदाय को शताब्दियां बीत गईं। इन जनजातियों में से कुछ समुदाय के सदस्य खेती-बाड़ी को अपना कर ग्रामों में स्थाई रूप से बस गए। खेती-बाड़ी को अपनाने से घुमन्तू जनजातियों को कष्ट साध्य भटकती जीवन शैली से मुक्ति मिल गई। इस प्रकार आसपास की थोड़ी सी भूमि पर अपनी आवश्यकता के लिए अन्न पैदा कर लेते और शीघ्र ही खेती-बाड़ी व्यवसाय को अन्य समुदायों ने भी अपना लिया। अब अन्न उत्पादन के कारण जनसंख्या में तेज़ी से बढ़ौतरी हुई, जिससे प्राकृतिक धन स्रोतों और पर्यावरण की अपूर्णीय क्षति होनी आरम्भ हो गई। विशेषकर जल स्रोतों और ज़रिम भण्डारों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। हिमालय और संसार के ज़रिम भण्डारों से हिमराशि के पिघलने की प्रक्रिया को 'पीछे हटने की अवधि' कहा गया है। वर्तमान युग 'पीछे हटने की अवधि' का है और वर्तमान में इस अवधि ने गति पकड़ी है। इसके बहुत सारे कारण हो सकते हैं। विशेषकर कार्बन सम्बन्धी गैसों की अधिक मात्रा, वनों का सफाया होना, नदी घाटियों में विद्युत उत्पादन के लिए विशाल जलाशयों के निर्माण और पृथ्वी की तापमान वृद्धि इत्यादि।

एक ज्वलंत प्रश्न समस्त संसार में गूंज रहा है परन्तु इसका कुप्रभाव अन्य स्थानों से अधिक एशिया के लिए है। यहां ऊंचे हिमालय पर्वत और क्युनलुनशान के मध्य स्थित उच्च तथा विस्तृत तिब्बती पठार स्थित है जिसका क्षेत्रफल पश्चिमी युरोप से अधिक है। यहां ध्रुव क्षेत्रों के पश्चात सबसे अधिक ज़रिम तथा हिम भण्डार मौजूद हैं। यहां के हिम भण्डारों से एशिया की महान नदियां सिंधू, सतलुज, गंगा, ब्रह्मपुत्र, मेकोंग, यंगज़े और हो निकलतीं हैं। इन नदियों ने ऐतिहासिक काल में सभ्यताओं को पाला पोसा, धर्मों को पैदा किया और पर्यावरण को संरक्षण दिया। आज ये नदियां एशिया के सर्वाधिक घनी आबादी क्षेत्र जो लगभग संसार की एक तिहाई के बराबर है, की जीवन रेखा हैं।

घेपङगो

ऐसा भूगर्भवेत्ताओं ने कुछ विरोधाभासी विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि संसार की छत पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं क्योंकि यहां की भूगर्भीय आधार पट्टी में जलवायु परिवर्तन की सहन शक्ति संसार के अन्य स्थानों से बहुत कम है। इस पठारीय भूभाग में बिछे ज़रिम भण्डारों में से छह प्रतिशत से अधिक 1970 तक सिकुड़ चुकी हैं। इससे भी अधिक हानि ताजिकिस्तान और उत्तरी भारत में हुई है। जो 35 प्रतिशत और 20 प्रतिशत तक विगत आधी शताब्दी में हुई है।

स्थानीय वयोवृद्ध तथा गद्दीजनों को हम कहते सुनते हैं कि गत पांच दशकों में उनके द्वारा पैदल पार किए ज़रिम पट्टी और हिम सेतु जो अजपथ में आते थे आज पिघल कर लुप्त हो गए हैं। स्पीति क्योमो ग्राम के एक आयुष्य लामा ने मुझे बताया कि एक ज़रिम जीह्वा (Glacier Tongue) पास के नाले में हुआ करता था। आज वह ज़रिम पिघल कर लगभग पचास वर्ष बीत गया। केलंग (लाहुल) के लिए सिंचाई का पानी पास के नाले से कुहल में डाल कर लिया जाता है। लगभग पचास वर्ष पूर्व प्रथम बार पानी को कुहल में डालने के लिए हिम खण्ड को काटना पड़ता था। आज यह हिमखण्ड एक किलोमीटर पीछे हट गया है। लाहुल के समस्त बगल नालों में नवम्बर मास तक अति ठंड के कारण पानी जम जाता था या बहुत कम बहता था। आज इन नालों में वर्ष भर पानी बहता रहता। यह कोई शुभ शगुन नहीं है। शीघ्र ही पहाड़ों में एकत्रित ज़रिम पिघल कर नाले सूख जाएंगे। लाहुल वास्तव में शीत मरुभूमि से उच्च मरु-भूमि बन जाएगा।

वर्ष 1836 तक उतरी भारत से मध्य एशिया के लिए व्यापारिक मार्ग अप्पर चन्द्राघाटी छतडू-फूटी रूणी, बातल, चन्द्रताल और बारालाचा (16,000 फुट) पार कर जाती थी। इस मार्ग पर नाले पड़ते थे। जिन्हें व्यापारी अपने लद्दू पशुओं के साथ हिम-सेतु द्वारा पार करते थे। वर्ष 1836 में जलवायु परिवर्तन का प्रथम मूल्य बड़ा शिगरी नाले का हिमसेतु पिघलने के रूप में अदा करना पड़ा था। अर्थात व्यापार मार्ग पुल न होने के कारण लगभग 30 वर्षों तक बंद रहा। तत्पश्चात् अंग्रेज़ी राज के समय भागा घाटी होते नदी और नालों में पुल बनवा कर पटसेऊ के स्थान पर व्यापारिक मण्डी स्थापित कर दोबारा उत्तरी भारत का व्यापार संबंध मध्य एशिया के यारकंद और खोतान शहरों के साथ स्थापित हो सका था।

सोलंग ग्राम के वयोवृद्ध कहते हैं कि लगभग 70/80 वर्ष पूर्व हनुमान टिब्बा और उसके पास का ज़रिम धुन्दी थाच के पास हुआ करता था। आज यह ज़रिम पीछे हट कर एक घण्टे की चढ़ाई मार्ग पर पहुंच गया है।

वर्ष 1821 में जोहन ट्रेबेक एक अंग्रेज़ यात्री लद्दाख से स्पीति आती बार परङ जोत (ऊं.17300 फुट) के पास फालोङ बलडग केम्प में ठहरा था। उसने अपने यात्रा संस्मरण में लिखा है कि उनके केम्प के पास एक ज़रिम जीह्वा पहुंची हुई थी। आज वही ज़रिम लगभग दो किलोमीटर पीछे हटकर उपरी पहाड़ी टेकरी पर टंगी हुई है। एक अन्य अंग्रेज़ यात्री थोमस थोम्सन ने 19वीं शताब्दी के चौथे दशक में ज़ंस्कर जाते समय शिङकुन जोत (ऊं.16800 फुट) पार करते समय आठ मील लम्बे ज़रिम को पार किया था। आज शिङकुन जोत से ज़रिम पिघल गया है।

यदि इन क्षेत्रों में विद्युत दोहन के लिए बड़े-बड़े जलाशयों का निर्माण किया जाता है तो उन स्थानों के ज़रिम तथा हिम भण्डारों के पिघलने की गति और तेज़ हो जाएगी और घाटियां निर्जन मरुघाटियों में बदल जाएंगी। पंजाब और पाकिस्तान में जल स्तर निम्नतम स्तर तक गिर कर पम्पों से भी पानी निकालना कठिन हो जाएगा। यदि पानी उपर आ भी गया तो प्राचीन टेथिस सागर का खारा जल आएगा जो पंजाब की भूमि को बंजर बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ेगा।

ऊंचे पर्वतों के प्राचीन नील ज़रिम भण्डारों से आता शीतल और स्वच्छ जल जन-जन को स्वास्थ्य और शान्ति प्रदान करे।

सर्वमंगलम्!

ग्राम बारीतुनी, खराहल ज़िला कुल्लू हि.प्र.।

लाहुल में बेगारी की प्राचीन प्रथा

तोबदन

बेगार अर्थात अवैतनिक और आवश्यक रूप से राजा या ठाकुर को किसानों द्वारा सेवा प्रदान करने की परम्परा हिमाचल प्रदेश के सभी रजवाड़ों में प्राचीन काल से चलती आयी है। यह प्रथा लाहुल में भी ऐसे ही प्रचलित थी। गांव के सभी घर यह सेवा नहीं देते थे। जिनके पास ज़मीन नहीं है या कम है उससे गांव का संगठन सेवा नहीं लेता था। लाहुल में इस प्रथा का भार लोगों पर, अन्य क्षेत्रों के मुकाबले, काफी भारी पड़ता था। इसके कुछ कारण थे जिन्हें हम निम्न प्रकार से गिना सकते हैं:-

लाहुल की जन संख्या बहुत कम थी। अन्य क्षेत्रों के मुकाबले यहां आने वाले अधिकारियों और यात्रियों की संख्या अधिक होती थी। कुल्लू और लद्दाख को जोड़ने वाली अंतर्राष्ट्रीय मार्ग यहां से होकर गुज़रता है। लाहुल में रास्ते उजाड़ हैं और रास्ता जोतों को लांघ कर जाता है। रास्ते में कई दिन बाहर खुले में काटना पड़ता है। लाहुल में खेती का काम इन्हीं गर्मियों के थोड़े से समय में करना होता है। उस समय एक आदमी का जंगथंग और कुल्लू व्यापार के लिए जाना ज़रूरी था। और आने वाले भी सभी इसी समय आते थे। अतः सारा काम एक ही समय में इकट्ठा हो जाता था।

इन सभी विवशताओं के होते हुए कभी-कभी घर में एक ही मर्द होता था, कभी एक भी नहीं होता था। ऐसी अवस्था में महिलाओं को जाना पड़ता था। यह मजबूरी थी। घर में नुकसान हो रहा हो तब भी करना पड़ता था। इसका भार वैसे सबके ऊपर बराबर रखा हुआ था।

लाहुल में हम जानते हैं बहुत से कार्य सामूहिक रूप से किये जाते हैं। जैसे बर्फ हट जाने के बाद सड़क, पुली, कुहल आदि की मुरम्मत के लिए गांव में हर घर से एक-एक व्यक्ति जाता था अथवा बारी-बारी से जाते थे। ऐसे और भी काम थे। यह तो निजी कार्य के लिए प्रबन्ध था।

राजकीय कार्य भी इसी नियम के आधार पर करते थे। यह निर्देश नहीं था किसी अधिकारी का, बल्कि लोगों का स्वयं अपनाया हुआ नियम था। कोठी के भीतर सड़क और पुलों की मुरम्मत इसी तरह से लोग करते थे। इसी प्रकार जो यात्री लाहुल के अन्दर ही घूमते थे उनके लिए अपनी-अपनी कोठी में अपनी सीमा तक यात्री को घोड़े और आवश्यक वस्तु का प्रबन्ध करना उसी कोठी के लोगों की ज़िम्मेवारी होती थी। इस का इन्तज़ाम कोठी के लोग स्वयं करते थे। इसमें शासक का कोई हस्तक्षेप नहीं था।

लेकिन वास्तविक कठिनाई तब आती थी जब यात्रियों को जोत लांघ कर लाहुल से बाहर जाना होता था। अंग्रेज़ी राज्य के समय इनकी संख्या बहुत अधिक थी और उनकी आवश्यकताएं भी अधिक थीं। यह अचम्भे की बात है कि इस कार्य के लिए सारा लाहुल संगठित हो गया था जो अपने सम्पूर्ण ऐतिहासिक काल में पूरे क्षेत्र के लिए मान्य था, ऐसा संगठन एक शासक अथवा राजा भी खड़ा नहीं कर पाया था।

लाहुल में किसी को भी कुल्लू, स्पीति, ज़ंस्कर या लद्दाख कहीं भी जाना हो रोहतांग, बारालाचा, शिङकुन या कुगती जैसे जोत पार करके ही जा सकता था। रोहतांग को छोड़ कर शेष सभी १६००० फुट से अधिक ऊँचे हैं। इसके लिए चौदह कोठियों ने मिल कर यह प्रबन्ध किया कि रोहतांग का ज़िम्मा रंगलोई अथवा तिनन घाटी की चार कोठियों की रहेगी। जो भी यात्री यहां से कुल्लू जाना चाहता है उसके लिए घोड़े तथा राशन का प्रबन्ध वही करेंगे।

शेष की सारी ज़िम्मेवारी दस कोठी ने सामूहिक रूप से मिलकर वहन करने का निर्णय लिया। यहां यह स्पष्ट कर दें कि उन दिनों स्पीति के लिए लाहुल से रास्ता बारालाचा और चन्द्रघाटी से होकर जाता था। इसमें यह छूट थी कि यदि किसी के पास घोड़ा नहीं है तो वह अपने स्थान पर किसी और को भेज सकता था। इसके लिए लोगों ने आपस में मिलकर नियत दर पर भुगतान करने का निर्णय लिया था जो इस प्रकार है:--

मार्ग का नाम	स्थानापन्न को देय राशि
रूबशो को, बारालाचा से होकर :	तीन रुपये, 32 किलो सत्तू, एक जोड़ा जूते, और घी एक किलो।
स्पीति को, बारालाचा से होकर :	दो रुपये, 16 किलो सत्तू, एक जोड़ा जूता और घी एक किलो।
ज़ंस्कर को, शिङकुन से होकर :	दो रुपये, 15 किलो सत्तू, एक जोड़ा जूता और घी एक किलो।
चम्बा को, कुगती से होकर :	दो रुपये, 15 किलो सत्तू, तीन जोड़े पूला।

यात्रियों से जो भुगतान मिलता था वह भी सामान ले जाने वाले को ही मिलता था। इसमें नागा करने वाले अथवा ऐसे लोग जो घोड़ा नहीं ला सकते थे काफी लोग होते थे। विशेष रूप से पट्टन से दो कोठी के लोग, जो नीचे की ओर हैं, उनके पास घोड़े नहीं होते थे। चूक करने वालों का हिसाब-किताब रखने का कार्य बहुत जटिल था। इसके लिए प्रबन्ध इस प्रकार किया गया था कि प्रत्येक कोठी से एक-एक प्रतिनिधि चुना जाता था जिसको 'सैणू' कहते थे। उसे प्रतिवर्ष छह रुपया नकद मिलता था तथा उसे बेगार से छूट थी। अलावा इसके प्रत्येक कोठी में दो-दो व्यक्ति नियुक्त किये जाते थे जिन्हें तलबदार कहते थे। उनका कर्त्तव्य था नियत दर पर लोगों से अनाज इकट्ठा करना, उसको स्टोर करना, और जब आवश्यक हो यात्रियों के लिए बांटना तथा उसका हिसाब रखना। उनको कोई वेतन नहीं मिलता था लेकिन उन्हें बेगार से छूट थी।

यह व्यवस्था ब्रिटिश राज के काल के आरम्भिक काल का है। उस समय यात्रियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। लेकिन राजाओं के काल में भी यह भार बहुत बड़ा था। बहुत से कामों के आलावा लड़ाई में जाने के लिए काफी तादाद में आदमी की ज़रूरत रहती थी। इससे प्रतीत होता है कि यह परम्परा जो इतनी कुटिल है काफी पुरानी है जिसको इस स्तर तक परिपक्व होने में काफी समय लगा होगा। अतः यह मानना होगा कि यह परम्परा ब्रिटिश राज से पहले से चली आ रही थी। वैसे लाहुल के पूरे इतिहास में केवल आज यही विषय है और यही उदाहरण मिलता है जिसके आधार पर सारा लाहुल एक मंच पर एकत्रित हो सका हो।

स्पीति में फसल आने के पश्चात हर घर से एक-एक खल जौ एकत्रित कर लिया जाता था और गांव में ही जमा कर लिया जाता था। कम-ज़्यादा हो तो उसका हिसाब बाद में कर लिया जाता था। जोत बन्द होने के बाद डंखर में हर साल एक सम्मेलन होता था जिसे 'ठल-सी छेद-मो' अर्थात 'मालगुज़ारी का बड़ा हिसाब-किताब' कहते थे। इसमें स्पीति का नोनो पांच कोठी का एक-एक मुखिया अर्थात पांच गदपो छेदमो और हर कोठी से दस-दस प्रतिनिधि अर्थात गदपो सम्मिलित होते थे। इस में साल भर में कर के रूप में इकट्ठा किए गए जौ की राशि का हिसाब किया जाता था। इसका खर्चा भी दिखाया जाता था जैसे कि लद्दाख के राजा को कितना जाएगा, नोनो को कितना तथा गदपोओं को वेतन में कितना जाएगा। इसी में बेगार के लिए एकत्रित जौ का भी हिसाब किया जाता था।

मियांबेहड़, कुल्लू।

मिलारेपा की जीवनी

गुरु मरपा को त्यागने का निर्णय

अजेय एवं ठिनले नमग्ञल

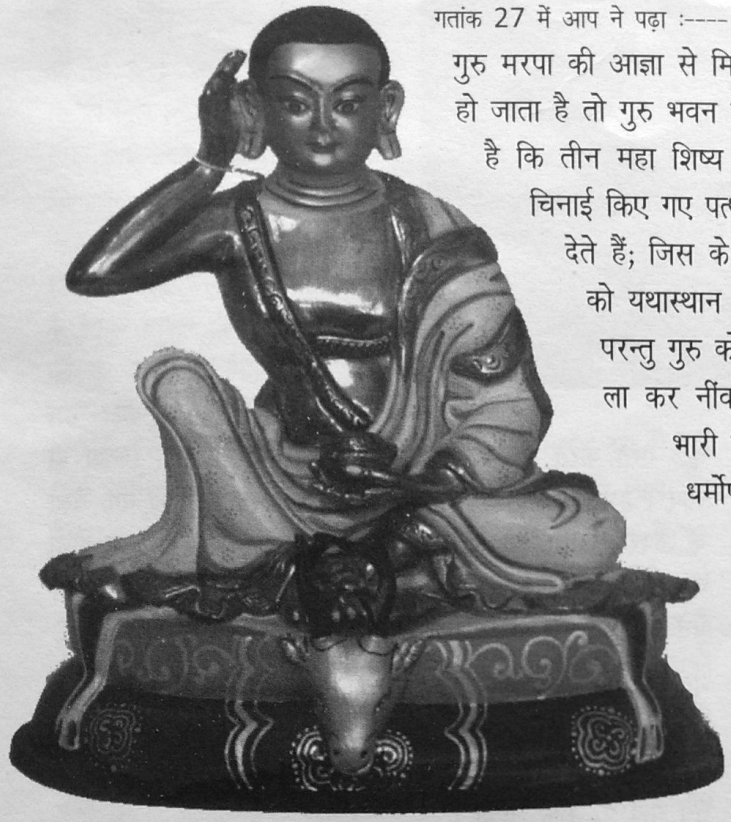

गतांक 27 में आप ने पढ़ा :----

गुरु मरपा की आज्ञा से मिलारेपा भवन चिनाई आरम्भ करते हैं। एक मंज़िला जब तैयार हो जाता है तो गुरु भवन में लगे पत्थर विशेष के बारे पूछने पर मिलारेपा (थुछेन) बताता है कि तीन महा शिष्य खेल-खेल में यह बड़ा पत्थर ले कर आए थे। इस पर गुरु चिनाई किए गए पत्थर को निकालने और वापिस उसी स्थान पर पहुंचाने की आज्ञा देते हैं; जिस के लिए थुछेन को पूरा भवन गिराना ही नहीं पड़ा, बल्कि पत्थर को यथास्थान पहुंचाना पड़ा।

परन्तु गुरु को इस से भी संतुष्टि नहीं हुई, उन्होंने थुछेन को पत्थर वापिस ला कर नींव के कोने में रखने की आज्ञा दी। वह सारी शक्ति लगा कर भारी पत्थर वापिस लाता है और आदेशानुसार निर्माण कार्य पूरा कर धर्मोपदेश अभिषेक पंक्ति में बैठता है, लेकिन गुरु उसे मार कर, प्रताड़ित कर बाहर निकाल देता है। निराश हताश थुछेन गुरु मां की सांत्वना और आश्वासन पा कर, गुरु के आदेश पर पुनः निर्माण कार्य में जुट जाता है। कार्य पूरा करने और कष्ट झेलने के बाद भी उस की इच्छा पूरी नहीं हुई तो गुरु मां को अपना घाव दिखा कर गुरु के वायदा का स्मरण दिलाया।

अब आगे----

लामा (गुरु) के पास जा कर गुरु माँ ने इस प्रकार निवेदन किया- "हे परम भट्टारक, जिस परिश्रम से थुछेन (महान जादूगर) भवन निर्माण का कार्य कर रहा है, उस की बाँहें और टाँगें घिस-घिस कर फट गईं हैं। त्वचा छिल गई है। उस की पीठ पर तीन घाव बन गए हैं जिन से खून और मवाद बह रहा है। मैंने घाव युक्त पीठ वाले गधों और टट्टुओं के बारे तो सुना है और अपनी आँखों से देखा भी है, लेकिन इंसान की पीठ पर घाव बनते कभी नहीं देखा और न ही कभी सुना। यदि किसी ने इस बारे सुन लिया तो आप के लिए शर्म की बात होगी। आप जैसा आदरणीय और महान गुरु इतना निर्मम कैसे बन सकता है? आप को इस बच्चे पर तनिक दया करनी चाहिए। कृपया इसे धर्मोपदेश दीजिए। आप ने आरम्भ में ही वचन दिया था कि जब वह भवन निर्माण पूरा कर लेगा तो उसे शिक्षा दे देंगे"।

गुरु ने उत्तर दिया- "हाँ, मैंने कहा तो यही था। लेकिन मैंने कहा था जब दस मंज़िल बन कर तैयार हो जाएंगे, तब उसे शिष्य बनाऊँगा। कहाँ हैं दस मंज़िल"?

"लेकिन उस ने नीचे एक छत वाला बरामदा (परिक्रमा के लिए) अतिरिक्त बनाया है जो कि आकार में दस मंज़िलों से कहीं अधिक बड़ा है"।

"बातें अधिक और काम कम! बुजुर्गों ने ठीक ही कहा है। जब वह दस मंज़िला भवन बना लेगा मैं उसे शिक्षा दे दूँगा। तब तक बिल्कुल नहीं। क्या सचमुच में उस की पीठ पर घाव बन गए हैं"?

"हे पूजनीय लामा! यह आप की स्वेच्छाचारिता है, जो आप की दृष्टि में बाधा उत्पन्न कर रही है। वर्ना आप को अवश्य दिखाई देता कि उस की पूरी पीठ पर घावों के सिवा कुछ भी नहीं है"। अत्यधिक वेदना पूर्ण स्वरों में उन्होंने ऐसा कहा और वहाँ से चली आईं। गुरु जी पीछे से पुकारते रहे-"तो बच्चे को मेरे पास भेज दो"।

अतः मैं भीतर गया। मैं यह सोच रहा था कि अंततः गुरु जी ने मुझे शिष्य स्वीकार कर ही लिया और अब मुझे धर्मोपदेश मिलेगा।

लेकिन गुरु जी ने मुझ से केवल इतना कहा-"महान जादूगर, मुझे अपनी पीठ तो दिखाओ"!

मैंने उन्हें अपनी पीठ दिखाई। ध्यानपूर्वक उस का परीक्षण कर लेने के बाद वे बोले-"मेरे महान गुरु नरोपा ने चौबीस तपस्याएं[1] कीं; बारह बड़ी तथा बारह छोटी। तुम ने जो यातनाएं झेली हैं वे सब मिला कर भी उन की तपश्चर्या के सामने कुछ भी नहीं है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने भी बिना दुविधा ग्रस्त हुए अपना पूरा जीवन और अपनी समस्त सम्पदा गुरु नरोपा को समर्पित कर दी थी। तो यदि तुझे सत्य की खोज करनी है तो अपनी छोटी मोटी तपश्चर्या पर वृथा घमंड न कर। विनम्र बन, भवन निर्माण का कार्य जारी रख और फल प्राप्ति के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर"।

मरपा

एक बार फिर मेरी आशाओं पर पानी फिर गया। किंतु फिर भी मैंने मन में सोचा कि गुरु जी सही कह रहे थे।

उन्होंने मेरे घावों को बचाने के लिए अपने चीवर से छोटी-छोटी गद्दियाँ बनाईं और मुझे सिखाया कि पीठ पर घाव वाले घोड़ों और गधों को कैसे पट्टियाँ बाँधी जाती हैं। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि मैं अपने साथ भी वैसा ही करूँ। मैंने पूछा-"गुरुदेव, इस से मेरे घावों का इलाज कैसे होगा जब कि पूरी पीठ ही एक बड़े घाव में परिवर्तित हो चुकी है"?

उन्होंने शांत भाव से बताया कि इस से तुम्हारे घाव धूल और मिट्टी से बचे रहेंगे और संक्रमण आगे नहीं बढ़ेगा। और मुझे सलाह दी कि इस से मैं पत्थर और मिट्टी ढोना जारी रख सकता हूँ।

मेरे पास गुरु के आदेश का पालन करने के सिवा कोई चारा न था। मैं मिट्टी का पात्र छाती पर उठा कर (क्यों कि पीठ पर घाव थे) गारा तैयार करने लगा। आदेशों की यह तत्काल अनुपालना और मेरा हार्दिक समर्पण भाव गुरु जी को असाधारण लगा! उन्होंने मन ही मन कहा-"वे शिष्य प्रशंसा के पात्र होते हैं जो बिना संशय के अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं"। वे गुपचुप खुशी के आँसू बहाने लगे।

लेकिन मेरे घाव संक्रमित होते गए और मैं बीमार पड़ गया। मुझे घावों पर भीषण पीड़ा होने लगी। मैंने गुरु माँ को यह बात बताई। माँ ने मेरी ओर से गुरु जी से प्रार्थना की कि मुझे धर्मोपदेश दिया जाए; या फिर कम से कम घाव भरने तक विश्राम करने दिया जाए।

गुरु ने कहा-"निर्माण कार्य सम्पन्न होने तक उसे कुछ न मिलेगा। यदि वह काम कर सकता है तो करे, अन्यथा आराम करे"।

माँ ने मुझे सलाह दी कि घाव ठीक हो जाने तक मैं आराम ही करूँ।

इस दौरान गुरु माँ ने मेरी खूब तीमारदारी की। अच्छा भोजन खाते हुए, अच्छे पेय पीते हुए मैंने कुछ दिन प्रसन्नतापूर्वक बिताए। मुझे केवल इस बात का दुःख था कि मुझे अभी तक शिष्यत्व नहीं मिला। मेरे घाव धीरे-धीरे ठीक होने लगे। एक दिन गुरु जी ने आ कर आदेश दिया-"महान जादूगर, काम पर लौटने का समय आ गया है"। मैं इस आदेश का पालन करने के लिए तैयार होने ही लगा था कि गुरु माँ ने मुझे चुपके से कहा-"हम कुछ ऐसा करते हैं कि गुरु जी तुम्हें शिष्य बनाने को विवश हो जाएं"। हम ने मिल कर एक योजना बनाई। मैंने सत्तू की एक थैली के ऊपर कुछ पोथियाँ और अपनी दूसरी वस्तुएं बाँध दीं। हम दोनों एक ऐसे स्थान पर गए जहाँ से गुरु जी हमें देख-सुन सकते थे। मैंने चीखना शुरु किया-"मुझे जाने दो, मुझे जाने दो!

गुरु माँ बहुत ऊँचे स्वर में कहने लगी-"तुम एक बार फिर से प्रयास कर के देख लो, मुझे लगता है गुरु जी तुम्हें शिक्षा दे देंगे। इन कठिनाइयों के बावजूद अन्यत्र कहीं भी जाने से बेहतर होगा कि तुम यहीं पर रुक जाओ"।

यह देख कर गुरु ने पूछा-"दा'मेमा[2], तुम लोगों ने यह क्या नाटक लगा रखा है"?

गुरु माता ने उत्तर दिया-"महान जादूगर कहता है कि वह आप से धर्मोपदेश प्राप्त करने की आशा लिए दूर दराज़ के गाँव से चल कर आया था। किंतु यहाँ उसे शिक्षा की बजाय गालियाँ और पिटाई ही मिली है। इस डर से कि कहीं वह उम्रभर के लिए धर्म से वंचित न रह जाए वह किसी अन्य गुरु की खोज में जा रहा है। और साथ में अपनी चीज़ें भी लिए जा रहा है। मैं प्रयास कर रही हूँ कि वह यहाँ से न जाए और यहीं शिक्षा प्राप्त करे। मैं किसी तरह से उस का प्रस्थान स्थगित करना चाहती हूँ"।

गुरु ने कहा-"अच्छा, यह बात है"! ऐसा कहते हुए वे अपने आसन से उतरे और मुझे पीटते हुए चिल्लाने लगे-"यहाँ पहुँचते ही तुम ने अविलम्ब मुझे अपना काय, वाक् और चित्त समर्पित किया था। और अब तुम भागना चाहते हो? तुम कहीं नहीं जा सकते। क्यों कि तुम मेरी सम्पत्ति हो और यदि मैं चाहूँ तो तुम्हारी काया के सैंकड़ों टुकड़े कर सकता हूँ। मुझे कोई नहीं रोक सकता। तब भी तुम जाना चाहते हो तो बताओ, मेरा सत्तू क्यों लिए जा रहे हो"

ऐसा कह कर उन्होंने मुझे भूमि पर गिरा दिया और हिंसक प्रताड़ना दी। उन्होंने ने मुझ से सत्तू का थैला छीन लिया और उसे ले कर भीतर चले गए। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मेरा हृदय चीर कर रख दिया गया हो। मेरा अवसाद उस माँ के समान था जिस ने अपना एकमात्र पुत्र खो दिया हो। साथ ही साथ मैं गुरु के असह्य तेजोमय आक्रोश से आतंकित था। मैंने सोचा कि यह सब गुरु माँ के साथ गुप्त मंत्रणाएं करने का फल है। मैं माँ की गोद में सर छिपा कर सुबकने के सिवा क्या कर सकता था?

गुरु माँ ने मुझ से कहा-"अब हम चाहे जो भी प्रयास करें-किसी भी प्रकार के अनुरोध, आग्रह, नाटक से कुछ नहीं होने वाला। हमारी किसी भी तरह की प्रार्थनाएं, योजनाएं और सन्धियाँ अब गुरु का हृदय परिवर्तन नहीं कर सकतीं। लेकिन चिंता न करो अंत में वे अवश्य शिक्षा देंगे। तब तक मैं तुम्हें कुछ निर्देश देने का प्रयास करती हूँ।

उन्होंने मुझे वज्र वराही[३] की साधना सिखाई। निस्सन्देह इस से मुझे कोई आध्यात्मिक ज्ञानानुभव[४] नहीं हुआ, लेकिन यह मेरे चित्त के लिए बहुत लाभकारी रहा और इस से मेरा आत्मबल बढ़ा। मैं गुरु माँ की इस अनुकम्पा से कृतकृत्य था! मैंने सोचा कि क्योंकि वह गुरु पत्नी हैं अतः उन से प्राप्त उपदेशों से मेरे पापों का शमन हो सकता है। बदले में मैंने यथा सम्भव छोटी मोटी दैनिक सुविधाओं के लिए गुरु माँ की सहायता की। मैंने उन्हें दो मूढ़े बना कर दिए। एक पर बैठ कर गर्मियों के मौसम में वे गऊओं को दुह सकतीं थीं और दूसरे पर वे तब बैठ सकती थीं जब वे घर के सामने दालान में जौ भून रही होतीं।

इस बीच मैं गम्भीरता पूर्वक किसी अन्य गुरु की शरण में जाने बारे सोचने लगा। लेकिन विचार करने पर मैं बार-बार एक ही निष्कर्ष पर पहुँच जाता कि यदि महान मारपा के पास इसी जन्म और इसी देह में बुद्धत्व प्राप्ति का ज्ञान नहीं है तो किसी अन्य के पास हो ही नहीं सकता। चाहे मुझे तुरंत निर्वाण न भी मिले, वर्तमान में इतना लाभ तो हो ही रहा है कि मैंने दुष्कर्मों का संचय करना छोड़ दिया है और निश्चित रूप से मेरा पुनर्जन्म निम्न योनियों में नहीं होगा। और यदि मैं महान नरोपा जैसी धर्मार्थ तपश्चर्याएं कर पाया तो गुरु जी प्रसन्नता पूर्वक मुझे धर्मोपदेश के योग्य घोषित करेंगे। तभी मैं साधना कर पाऊँगा और इसी जन्म में बुद्ध बनने की आशा कर पाऊँगा। ऐसा सोचते हुए मैंने पत्थर और मिट्टी एकत्रित करना आरंभ कर दिया।

जब मैं पूजागृह और परिक्रमा पथ के लिए गारा तैयार कर रहा था उस समय शुङ् प्रदेश से लामा डोग्तोन छोदोर अपने अनुयायिओं के साथ हेवज्र[५] की दीक्षा के लिए मारपा के पास आए।

गुरु माँ ने मेरे पास आ कर कहा-"यदि गुरु अब भी तुम्हारे समर्पण, श्रद्धा और कठोर श्रम से संतुष्ट नहीं हैं; यदि उन्हें अपनी दीक्षा शुल्क की एवज़ में कोई आर्थिक उपहार ही चाहिए तो हम उन्हें एक ऐसी चीज़ भेंट करेंगे कि वे तुम्हें इस या किसी भी दीक्षांत समारोह में भाग लेने से मना नहीं कर पाएंगे। यदि मना करें भी तो मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगी"।

ऐसा कहते हुए उन्होंने मेरे हाथ में एक बड़ा सा गहरा नीला अमूल्य फिरोज़ा रखा। यह फिरोज़ा उन की निजी सम्पत्ति थी जो उन्होंने अपने पति से छिपा कर रखा हुआ था। इसे लेकर मैं उन शिष्यों की पंक्ति में शामिल हो गया जो इस समारोह में दीक्षित होने के लिए आए थे। गुरु जी ने उस बेशकीमती फिरोज़े को उलट पलट कर देखा और देर तक उस का सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद बोले-"महान जादूगर,तुम्हें यह फिरोज़ा कहाँ मिला"?

"आदरणीय गुरु माँ ने मुझे यह दिया"।

वे मुस्कराए और कहा-दा'मेमा को यहाँ बुलाओ"!

गुरु माँ उपस्थित हुईं तो उन से पूछा गया-"दा'मेमा, यह फिरोज़ा हमें कैसे मिला"?

गुरु के सम्मुख अनेक बार दण्डवत प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा -"हे परमपिता, यह फिरोज़ा हमारी साँझा सम्पत्ति नहीं है। यह मेरी निजी सम्पत्ति है जो मुझे मेरे माता-पिता ने हमारे विवाह पर उपहार स्वरूप दिया था। आप के गुस्सैल स्वभाव के कारण उन्हें चिंता थी कि कहीं हम दोनों में अलगाव न हो जाए। तो यह फ़िरोज़ा मुझे मेरे कठिन दिनों के लिए दिया गया था। मुझे कहा गया था कि इसे गुप्त रखूँ और जब तक विपत्ति न आए किसी को न दिखाऊँ। लेकिन इस बालक की लगन और धर्मोपदेश के लिए उत्कटता देख कर मुझ से रहा न गया और मैंने उसे भेंट कर दिया। कृपया इसे स्वीकार कीजिए और थुछेन को दीक्षा प्रदान कीजिए। आप ने पूर्ववर्ती समारोहों में अनेक बार पवित्र वृत्त[६] से बाहर निकाल कर उसे घोर मानसिक यंत्रणा दी है । अतः मुझे प्रार्थना करने की अनुमति दीजिए कि इस बालक पर आप की कृपा दृष्टि पड़ जाए। मैं यहाँ उपस्थित लामा डोग्पा और मेरे पुत्र समान उन के शिष्यों से अनुरोध करती हूँ कि वे मेरी इस प्रार्थना में अपना सहयोग दें"।

ऐसा कहते हुए उन्होंने पुनः दंडवत प्रणाम किया।

गुरु के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए किसी की भी हिम्मत नहीं हुई कि वे मुँह से कुछ बोलें। उन्होंने केवल खड़े हो कर झुकते हुए गुरु माँ के उद्गारों में अपनी मूक सहमति दी।

गुरुजी ने फ़िरोज़ा अपने गले में धारण करते हुए कहा-"दा'मेमा की मूर्खता और भोलेपन के कारण हम ने एक अमूल्य वस्तु लगभग खो ही दी थी। हे गुरु पत्नी, जब कि मैं स्वयं ही तुम्हारा स्वामी हूँ तो यह फ़िरोज़ा भी तो मेरा ही हुआ! महान जादूगर, तुम उपहार

स्वरूप अपनी कोई निजी चीज़ ले कर आओ और शिष्यों की पंक्ति में शामिल हो जाओ। यह फिरोज़ा तो मेरी सम्पत्ति है"।

मैंने सोचा कि गुरुमाँ का उपहार स्वीकार कर लिया गया है तो अभी भी उम्मीद है कि मुझे वहाँ बैठने दिया जाएगा। इस लिए मैं वहीं खड़ा रहा। लेकिन गुरुजी बहुत क्रोधित हो कर खड़े हो गए और बोले-"उद्दण्ड बालक! तुम से चले जाने के लिए कहा है मैंने और तुम यहीं खड़े हो"?

उन्होंने मेरा चेहरा फर्श पर घसीटा। मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया । फिर मुझे उठा कर पीठ के बल भूमि पर पटक दिया। मुझे तारे दिखने लगे। फिर मुझे पीटने के लिए छड़ी उठा ली। लामा ङोग्तोन ने उन्हे रोक दिया। घबरा कर मैं खिड़की के रास्ते दालान में कूद गया। इस से गुरु जी तनिक व्यग्र हो गए, यद्यपि प्रकटतः अभी भी क्रोध दिखा रहे थे।

इस छलाँग से मेरी देह पर खास चोटें तो नहीं आईं लेकिन मेरा हृदय विदीर्ण हो गया था और मैंने आत्महत्या करने की ठान ली। तभी गुरु माँ रोती हुईं नीचे पहुँची और कहने लगीं-"थुछेन, तुम यह सब दिल पर मत लेना। हताश मत होना। इस संसार में तुम से अधिक प्रिय और आज्ञाकारी शिष्य और कोई नहीं है। यदि तुम्हें किसी अन्य गुरु से दीक्षा लेनी है तो मैं उपहारों और खर्चे का प्रबन्ध करती हूँ"।

इस प्रकार मुझे सांत्वना देते हुए वह रात भर रोती हुईं मेरे पास बैठी रहीं। उन्होंने सन्ध्या कालीन अनुष्ठान की भी परवाह नहीं की जिस में गुरुजी को उन की मदद की आवश्यकता पड़ती थी।

प्रातः गुरुजी ने मुझे बुलाया। एक बार फिर से मुझे उम्मीद जगी कि अब मेरी आकांक्षा पूरी होने वाली है। उन्होंने पूछा-"कल की घटना से क्या तुम्हारी मुझ पर आस्था डिगने लगी है? क्या मन में मेरे प्रति घृणा या द्वेष उत्पन्न हुआ है"?

"मेरी आस्था लेश मात्र भी कम नहीं हुई है। यह तो मेरे अपने बुरे कृत्यों का फल है, जो मुझे दीक्षित होने में बाधा उत्पन्न कर रहा है। और पश्चात्ताप के बाण मुझे छलनी किए दे रहे हैं"।

ऐसा कहते हुए मेरी अश्रुधारा फूट निकली ।

"इस तरह से रो कर मुझे से अब कौन सा अनुचित कार्य करवाना चाह रहे हो? दफा हो जाओ यहाँ से"!

हृदय को मथ कर रख देने वाले दैन्य और बेचारगी से भरा मैं स्वगत बड़बड़ाता हुआ बैठा था-

"जब दुष्कर्मों का संचय कर रहा था तब मैं साधन सम्पन्न था। अब जब कि धर्माभ्यास कर रहा हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। यदि आज मेरे पास उस का आधा भी सोना होता जितना मैंने दुश्मनों से बदला लेने और पाप अर्जन के अन्य कार्यों में खर्च किया है, तो निश्चित रूप से मैं दीक्षा का अधिकारी होता और सद्धर्म का रहस्य जान गया होता। कोई भी गुरु बिना उपहारों के मुझे अपना शिष्य नहीं स्वीकार करता। धर्म गरीबों के लिए प्रतिबन्धित है! लेकिन धर्म के बिना जीना तो केवल पापों का संचय करना है। तो क्या मैं आत्महत्या करूँ?

क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?

क्या किसी धनवान के पास नौकरी कर लूँ? धन कमाऊँ और फिर उपहार खरीद कर दीक्षा प्राप्त करूँ? क्या मैं अपनी माँ के पास अपने गाँव लौट जाऊँ? शायद वहाँ से मुझे कुछ धन प्राप्त हो जाए! लेकिन वहाँ मेरे गाँववासी मेरे काला जादू से इतना त्रस्त हो चुके हैं उन का सामना ही नहीं कर पाऊँगा। जो भी हो, मुझे दो विकल्पों में से एक तुरत चुन लेना होगा; धर्म या धन? अभी इस क्षण निर्णय लेना होगा कि दोनों में से किस की खोज में जाऊँ?

पर इतना तय है कि अब यहाँ नहीं रहना है किसी भी हाल में निकल जाना है!

..... क्रमशः

प्रसार अधिकारी, उद्योग केन्द्र, केलंग।
शास्त्री, रा.व.मा.पा.,कोलोङ।

नोट -- अपरिहार्य परिस्थितियों के चलते इस बार का यह अनुवाद भोटी मूल-पाठ से नहीं अपितु दो विभिन्न अंग्रेज़ी अनुवादों के आधार पर किया गया है।

-- अनुवादक।

---

१. तिब्बत के महानुवादक लामा मरपा भारतीय सिद्ध नरोपाद के शिष्य थे। और नरोपाद तिलोपाद के शिष्य थे। ये सभी सिद्ध चौरासी सिद्धों में गिने जाते हैं। इन में सरहापाद को हिन्दी के पाठक जानते हैं जो अपभ्रंश भाषा के बहुत प्रख्यात कवि भी थे। नरोपाद की जीवन कथा (नमथर) में उन चौबीस तपश्चर्याओं का विस्तृत विवरण दिया गया है जिन को साध लेने के बाद ही उन्होंने अपने षड्ङ्ग योग (नरो छो डुग) का प्रतिपादन किया जो कि कग्युः परम्परा की साधना का मूलाधार है।

२. गुरु मरपा की पत्नी का नाम। (तिब्बती) शब्दिक अर्थ='अहमन्यता विहीन'।

३. एक भारतीय देवी का नाम और साथ में एक तांत्रिक साधना पद्धति का नाम भी (संस्कृत) वज्र=आसमानी बिजली (प्रतीकार्थ=निर्विकार) / वराही=मादा सूअर। यह एक गुह्य प्रतीकात्मक साधना उपकरण है। ब्राह्मण परम्परा में इसे जनकात्मिका कहा गया है। अर्थात् यह पितृ लक्षणों से भी सम्पन्न है। तिब्बत के आस्थावानों की मान्यता है कि यह तिब्बत के समलिङ मठ में मठाध्यक्षा के रूप में अवतरित हुई है। और तिब्बत की एक मात्र महिला अवतार है (तिब्बती) र्‌दो-र्‌जे फग-मो (दोर्जे फग्मो)

४. किसी सक्षम गुरु के साथ साधना करने पर प्राप्त आध्यात्मिक अनुभूतियाँ ।

५. (संस्कृत) अनुत्तर तंत्र का एक यिदम (इष्ट) जो तत्वतः पितृ एवं मातृ तंत्र का यौगिक स्वरूप है। यह भी एक साधना पद्धति है। इस पद्धति में दो तरह की साधनाओं पर बल दिया गया है -- एक, लौकिक काया का सम्भोगकाया में रूपांतरण। दूसरा, चेतना की आंतरिक शून्यता की अनुभूति। (तिब्बती) = द-ग्येस्पा र्‌दो-र्‌जे। (गेपा दोर्जे) यह एक यिदम होने के साथ साथ भोटी भाषा में तंत्र ग्रंथों की आठ खण्डों में उपलब्ध एक रचनावली भी है।

६. दीक्षा समारोह में श्रोताओं के लिए खींची गई सीमा रेखा जिस के भीतर केवल दीक्षित होने के अधिकारी शिष्य ही बैठ सकते हैं ।

शिव-पार्वती विवाह गीत

सतीश कुमार लोप्पा

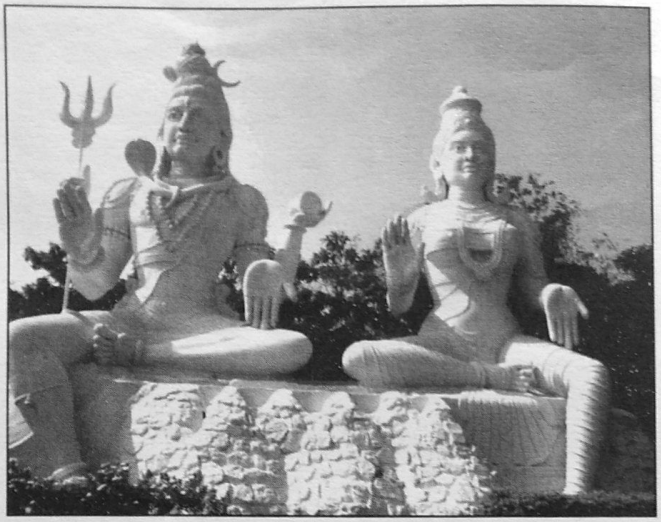

जन्म से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य जीवन में अनेक संस्कारों का विधान भारतीय शास्त्रों में मिलता है जिन की संख्या सोलह बताई गई है। इन संस्कारों में विवाह भी एक महत्वपूर्ण संस्कार है। समाज में लोक कवियों ने ऐसे संस्कारों के अनुरूप एवं अवसरोचित गीत रचे हैं, लोग जिन्हें आज भी ऐसे अवसरों पर चाव से गाते हैं। लाहुल में यद्यपि शास्त्रोक्त रीति से ठीक-ठीक ऐसा कुछ शायद उस रूप में किया नहीं जाता, तथापि विवाह, मृत्यु आदि संस्कार कर्मों के अवसर पर गीत गाए जाने की परम्परा है। यहां 'चङसा' (पटन घाटी) क्षेत्र में प्रचलित एक विवाह-गीत प्रस्तुत किया जा रहा है जिस में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है। अन्य भी अनेक विवाह-गीत हैं जिन में उस समय के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के विवाह का वर्णन है। लेकिन शिव के विवाह-गीत का विशेष महत्व है क्योंकि शिव, शिव हैं, इस क्षेत्र में व्यापक रूप से पूजित हैं, स्तुत्य हैं। ऐसा माना जाता है कि पार्वती का पितृ-गृह इसी क्षेत्र में था और भगवान शिव की बारात भी प्रकृत्या इसी क्षेत्र में आई थी। चन्द्रभागा संगम के पार्श्व में स्थित पर्वत शिखर ड्रिल्बु अथवा ड्रिल्बु-री को हिंऊजल रज़्ज़ा अर्थात् पर्वत राज हिमालय का बेहढ़ा यानि प्रासाद कहा जाता है। भगवान शिव इसी ड्रिल्बु स्थित हिऊंजल राजमहल से गौरी (=देवी पार्वती) को ब्याह कर अपने निवास, पवित्र मणिमहेश झील के सामने स्थित शिखर कैलाश पर ले गये थे। ड्रिल्बु से शिखर कैलाश तक लाहुल घाटी की बाईं ओर की पहाड़ियों की चोटियों पर सर्पिल धारियां रेंगती हुई दिखाई देती हैं। इस धारीदार पट्टी को शिव-पार्वती विवाह का मार्ग कहा जाता है। इस तरह चङसा (=पटन) क्षेत्र के जनमानस पर भगवान शिव का गहरा असर देखने को मिलता है, विशेषकर जब उसे मणिमहेश के साथ जोड़ कर देखा जाता है। इस तरह लाहुली जन-मन ने शिव-पार्वती विवाह गीत के गायन को मंगलकारी मान कर विवाह के अवसरों पर अदा की जाने वाली रस्मों में स्थान दिया।

विवाह के दिन जब बारात चलने लगती है, उस समय यह गीत गाया जाता है। मुख्य गायक गीत की एक पंक्ति को दो बार गाता है और अन्य लोग उसी स्वर-लय में उसी पंक्ति को दो बार गा कर उत्तर देते हैं। साथ ही साथ ढोल तथा बांसुरी पर 'ब्याह-फोन्ड्रिमि-राग' अर्थात 'विवाह-प्रस्थान-राग' बजाया जाता है जिस का ढोल पर ताल कुछ इस तरह चलता है;

तगिण गिण गिण, तगिण च़ङ च़ङ ।
तगिण गिण गिण, तगिण च़ङ च़ङ ।।

इसी ताल पर इस विवाह गीत को भी बांसुरी पर बजाया जाता है। गीत एवं 'फोन्ड्रिमि-राग' की धुनों के बीच क्रमशः शिरदार, अर्थात बारात का मार्गदर्शक शीर्ष पुरुष जो दूल्हे के चाचों या मामों में से होता है, बक्ट्रिक्पा, अर्थात् दुल्हन का हाथ पकड़ कर मार्गदर्शन करने वाला तथा ब्योउहू अर्थात दूल्हा, इन तीन लोगों को 'फर' यानि चौरस अग्नि स्थल जो हर लाहुली घर में होता है, के गिर्द घड़ी की सूईयों के विपरीत तीन, पांच, सात आदि क्रम से चक्कर लगवा कर नचाया जाता है। इस रस्म के पूर्ण होने पर ही बारात घर से प्रस्थान करती है। दुल्हन के घर तक के पूरे मार्ग में विवाह गीतों के गाए जाने की परम्परा रही है। शिरदार को गीत गाने वाले शीर्ष गायक की भूमिका भी निभानी होती थी। लेकिन यह अब भूत काल की चीज़ बन गई है। बदलते वक्त के साथ ये परम्पराएं भी सिमटती ही चली गई हैं। आज कल तो बांसुरी वादक ही 'जानते-न-जानते' थोड़ा बहुत खाना पूर्ति कर देते हैं, इसी से सब संतुष्ट हो जाते हैं। कहीं कहीं तो वह भी ज़रूरी नहीं समझते।

बहरहाल, यह गीत कुछ इस प्रकार चलता है;

ए ईशूरा बीरा बरा मांगुणे लागी।
ए जाओ बमूना बरू ए मंगाए।

जब भगवान शिव के अन्दर विवाह की कामना जागृत हुई तो उन्होंने देवर्षि नारद को बुला कर कहा, हे ब्राह्मण जा कर मेरे योग्य कन्या की खोज करो।

ए हाथाना लीये बरूमल्ला शोठी ---
गाड़ा न लीये लुदूरे री माड़े।
(ये दो पंक्तियां इकट्ठा गाई जाती है)

हाथ में बरुमल यानि टिंबर की सोठी और गले में रुद्राक्ष की माला धारण कर ब्राह्मण चलने को उद्यत हुए।

ए जाओ बमूना ए पुरूबल्ला मुलूके।
ए पुरूबल्ला मुलूके बरू नाये मिलांदे।
पुरूबल्ला मुलूके मेये ढुण्डे आये।

हे ब्राह्मण, पूर्व के देश जाओ। पूर्व-देश को छान मारने के बाद भी देवर्षि को शिव के योग्य कोई कन्या नहीं मिली। फिर भगवान के पास आकर कहा, पूर्व-देश में मैं ढूंढ कर आया हूं, वहां आप के योग्य कोई कन्या नहीं है।

ए जाओ बमूना ए दाखाणा खाप्टे।
ए हाथाना लीये बरूमल्ला शोठी-
गाड़ा न लीये लुदूरे री माड़े।
ए दाखाणा मुलूके बरू नाये मिलांदे।
ए दाखाणा मुलूके मेये ढुण्डे आये।

हे ब्राह्मण, तुम दक्षिण खण्ड जाओ। हाथ में टिंबर की सोठी और गले में रुद्राक्ष की माला लिए ब्राह्मण चल पड़े। दक्षिण-देश में भी कोई योग्य कन्या उसे नहीं मिली। लौट कर फिर बताया कि दक्षिण खण्ड में भी कोई योग्य कन्या नहीं है। मैं सब जगह ढूंढ आया हूं ।

मेलिङ डेहरा, लाहुल

ए जाओ बमूना ए पाछम्मा मुलूके।
ए हाथाना लीये बरूमल्ला शोठी-
गाड़ा न लीये लुदूरे री माड़े।
ए पाछम्मा मुलूके बरू नाये मिलांदे।
ए पाछम्मा मुलूके मेये ढुण्डे आये।

हे ब्राह्मण, अब तुम पश्चिम-देश जाओ। हाथ में टिम्बर की सोठी, गले में रुद्राक्ष की माला लिए ब्राह्मण पश्चिम की ओर चल पड़े। पश्चिम-देश में भी कोई योग्य कन्या नहीं मिली। फिर भगवान महादेव से आ कर बोले, पश्चिम देश में ढूंढ आया हूं वहां भी कोई योग्य कन्या नहीं मिली।

ए जाओ बमूना ए ऊतूड़ा मुलूके।
ए हाथाना लीये बरूमल्ला शोठी-
गाड़ा न लीये लुदूरे री माड़े।
ए ऊतूड़ा मुलूके बरू नाये मिलांदे।
ए ऊतूड़ा मुलूके मेये ढुण्डे आये

हे ब्राह्मण अब तुम उत्तर मुल्क जाओ। हाथ में टिम्बर की सोठी, गले में रुद्राक्ष की माला लिए ब्राह्मण फिर चल पड़े। उत्तर मुल्क में भी कोई योग्य कन्या नहीं मिल सकी। ब्राह्मण भगवान से फिर बोले, उत्तर खण्ड भी मैं ढूंढ आया, वहां भी कोई योग्य कन्या नहीं मिली।

ए ईशूरा बीरा ए आन्तराजामी।

चारों दिशाओं को छान मारने के बाद भी जब कोई योग्य कन्या नहीं मिली तो देवर्षि नारद ने भगवान शिव से निवेदन किया कि हे ईश्वर, आप तो अन्तर्यामी हैं, स्वयं ही कृपा कर बताएं कि आप के योग्य कन्या कहाँ है। तब भगवान शिव ने मुस्कुराते हुए कहा।

ए जाओ बमूना ए हिउंए पन्ता मुलूके।
ए हिऊं पन्ता मुलूके हिउंए जल्ला राजा।
ए हिऊं पन्ता मुलूके हिउंए चूणी राणी।
ए हिऊंचूणी राणी कनीयां कूमारी।

हे ब्राह्मण तुम हिमवन्त देश जाओ। हिमवन्त देश के अधिपति हिऊंजल राजा (=हिम अचल) हैं और उन की पुत्री हिऊंचूणी राणी वहीं वास करती हैं। यही वह कुमारी कन्या है जो मेरे योग्य है।

ए हाथाना लीये बरूमल्ला शोठी-
गाड़ा न लीये लुदूरे री माड़े।
ए चलो मेरे बमूना हिउंए पन्ता मुलूके।
ए जाँ च़ल्ली बमूना ताँ च़ल्ली बिशूनू।
ए जाँ च़ल्ली बिशूनू ताँ च़ल्ली ब्रह्मा।
ए हिऊं पन्ता मुलूके हिउंए जल्ला राजा।
ए ब्रह्मा बिशूनू हिउंए पन्ता मुलूके।

हाथ में टिम्बर की सोठी, गले में रुद्राक्ष की माला लिए नारद फिर तैयार हो गये। हे मेरे ब्राह्मण, हिमवन्त देश चलो। जहां ब्राह्मण जाते हैं वहां विष्णु भगवान आप ही आ जाते हैं और जहां विष्णु जाते हैं वहां ब्रह्मा जी स्वयम् पहुंच जाते हैं। इस तरह ब्रह्मा और विष्णु भी हिमवन्त देश पहुँच गये, जहां हिऊंजल राजा का राज्य है।

ए चलो मेरे बमूना हिउंए पन्ता मुलूके।
ए हिऊं चूणी राणी बरा मांगुणे आये।
ए ब्रह्मा बिशूनू संगेयाना तयारी।

चलो मेरे ब्राह्मण, हिमवन्त देश चलो। ब्रह्मा और विष्णु भी साथ हो लिए। हिऊंजल राजा के यहां जा कर बोले, हे राजन् हम लोग आप की पुत्री हिऊं चूणी राणी का हाथ भगवान शिव के लिए मांगने आये

हैं, कृपया अपनी स्वीकृति प्रदान करें।

ए हिऊं चूणी राणी बरू ए मंगाये।
ए हिऊं पन्ता मुलूके गजूपत्ता हींवां।

इस प्रकार हिऊं चूणी राणी की मंगनी सम्पन्न हुई और शिव-पार्वती विवाह तय हुआ। फिर विवाह का नियत दिन भी आ गया, और उसी समय हिमवन्त देश में गज़ों के हिसाब से भारी हिमपात हो गया। कहते हैं कि हिऊंजल राजा ने शिव की ताकत का अन्दाज़ा लगाने के लिए ही हिमवन्त देश में ठीक विवाह की पूर्वसंध्या को नौ गज़ हिम 'उतार' दिया।

(यहां से आगे गीत का लय परिवर्तन हो जाता है, लेकिन कथा वही है।)

ए शिया मेघा पञ्जा गौरी रे ब्याहये।
ए शिया मेघा बादेला शींगा जो शीया।
ए ताँ होंणां पञ्जा गौरी रे ब्याहये।

गौरी के विवाह में शीत और मेघों का प्रकोप इतना प्रबल था कि बैलों (गाय x याक से उत्पन्न बैल) के सींगों को भी ठंड महसूस होने लगी। ऐसी भीषण परिस्थितियों को जीत कर ही गौरी का विवाह संभव हो सकता था।

ए ईशूरा बीरे धामाणा दीती।
ए धमे धामे सूरा बीरा जो धामे।
ए धमे धामे रिखी मूनी जो धामे।
ए धमे धामे देवी दानौ जो धामे।
ए ताँ होंणां पञ्जा गौरी रे ब्याहये।

भगवान शिव ने सब ओर विवाह का निमन्त्रण भेज दिया। बड़े-बड़े शूर-वीर, ऋषि-मुनि, देव-दानवों को निमन्त्रण भेजा गया। तभी सम्भव हो सकेगा गौरी का विवाह।

ए धमे धामे बासिका नागे जो धामे।
ए धमे धामे काड़ी नागे जो धामे।
ए धमे धामे नौ लक्खा तारे जो धामे।
ए धमे धामे अजुगरा बीरा जो धामे।
ए ताँ होंणां पञ्जा गौरी रे ब्याहये।

वासुकि नाग, काली नाग, नौ लाख तारों और अजगर वीर को भी निमन्त्रण भेजा गया। तभी सम्भव हो सकेगा गौरी का विवाह।

ए बासिका नागे री पगूड़ी बाणाये।
ए काड़ीना नागे री हारा गून्दाये।
ए नौ लक्खा तारे री सेहरा बाणाये।
ए भ्याणू रे तारा तिलीका चाढ़ाये।
ए ताँ होंणां पञ्जा गौरी रे ब्याहये।

भगवान महादेव ने वासुकि नाग की पगड़ी, काली नाग को गले का हार, नौ लाख तारों का सहरा बनाया तथा भौर के तारे का तिलक लगाया। तभी संभव हो सकेगा गौरी का विवाह।

ए अजूगारा बीरे झामाणा च़ालाए
ए गदी दें दे अरूगा गदी दें दे धूपे।

अजगर नाम के गरुड़ ने शिव की पालकी को अपनी पीठ पर उठाया और बारात हिऊंजल राजा के महल की ओर चल दी। जब वे महल के द्वार पर पहुंचे तो वहां बारातियों के स्वागत में नियुक्त लोग कभी अर्घ्य प्रस्तुत करने लगे तो कभी धूप।

ए झामाणा झामेटु एकी ना न्ह्वारे।
ए कसे जोगू अरुगा कसे जोगू धूपे।
ए अजूगारा बीरे झामाणा च़ालाए ---
तिसा जोगू अरुगा तिसा जोगू धूपे।
ए बासीका नागे री पगूड़ी बाणाये ---
तिसा जोगू अरुगा तिसा जोगू धूपे।
ए काड़ी ना नागेरी हारा गून्दाये ---
तिसा जोगू अरुगा तिसा जोगू धूपे।

स्वागतकर्ता असमंजस में थे कि वे किसे अर्घ्य और धूप प्रस्तुत करें; कहने लगे कि पालकी में आरूढ़ और पालकी के वाहक सब एक समान दिख रहे हैं, हम किसे अर्घ्य दें और किसे धूप! सब बारातियों ने कहा कि जिस की पालकी को अजगर वीर उठाये है, उसी को अर्घ्य दें, और उसी को धूप दें। जिस ने वासुकि नाग को पगड़ी और काली नाग को गले का हार बनाया हुआ है, उसी को अर्घ्य दें और उसी को धूप दें।

ए नौ लक्खा तारा सेहरा बाणाये ---
तिसा जोगू अरुगा तिसा जोगू धूपे।
ए भ्याणू रे तारा तिलीका चाढ़ाये ---
तिसा जोगू अरुगा तिसा जोगू धूपे।
ए ताँ होंणां पञ्जा गौरी रे ब्याहये।

जिस ने नौ लाख तारों का सेहरा धारण किया हुआ है, और भौर के तारे का तिलक लगाया है, उसी को अर्घ्य दें और उसी को धूप दें। इस भांति हुआ गौरी का ब्याह।

ए हिऊं पन्ता मुलूके नोउंए गाजा हींवां।
ए ताँ होंणां पञ्जा गौरी रे ब्याहये।
ए अगे आगे शूऊड्कारा बीरा।
ए अगे आगे नोउंए गाजा हींवां।
ए पीछे ना ए धूड़े नू धूड़े।
ए ताँ होंणां पञ्जा गौरी रे ब्याहये।

हिमवन्त देश में नौ गज़ बर्फ पड़ी हुई थी, ऐसे में हुआ गौरी का विवाह। बारात के आगे आगे शूऊड्कारा वीर चल रहा था, जो अपने फुंकारों से रास्ते पर से बर्फ का नामों निशान उड़ाता जाता था। बारातियों को आगे आगे तो नौ गज़ बर्फ से जूझना पड़ रहा था, वहीं जो लोग पीछे आखीर में चल रहे थे उनके पैरों तले सिर्फ धूल ही धूल बची रह गई थी। तब वे हिऊंजल महल पहुंचे और इस भांति शिव-गौरी का विवाह सम्पन्न हुआ।

गांव नीरामाटी, डाकघर बन्दरोल, कुल्लू।

मोक्ष का मार्ग

सीता राम गुप्ता

विपश्यना के आचार्य सत्यनारायण गोयंका कहते हैं:

भोगत-भोगत भोगते बंधन बंधते जांय,
देखत-देखत देखते बंधन खुलते जांय।

कैसा होता है देखना और किसको देखना? देखने मात्र से ऐसे कौन से बंधन हैं जो खुल जाते हैं? जे. कृष्णामूर्ति कहते हैं कि द्रष्टा ही दृश्य है तो क्या स्वयं को देखना ही बंधनमुक्त होना है? जी हाँ, स्वयं द्वारा स्वयं को देखना ही मुक्त होने का मार्ग है और इसी देखने का नाम है 'विपश्यना'। आत्म निरीक्षण की प्रकिया द्वारा स्वयं को और स्वयं के माध्यम से वस्तुओं और स्थितियों को उनके यथार्थ रूप में देखने की योग्यता ही 'विपश्यना' है।

हिंदू धर्म में मोक्ष की प्राप्ति अनिवार्य मानी गई है। जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त होना मोक्ष माना गया है और इसके लिए ईश्वर की कृपा पाना अनिवार्य है। ईश्वर की कृपा पाने के लिए अनिवार्य है भक्ति मार्ग का अवलंबन लेकिन बौद्ध मत के अनुसार मुक्ति के लिए किसी ईश्वरीय अथवा दैवीय अनुकंपा की आवश्यकता नहीं। बौद्ध मत के अनुसार वस्तुओं और स्थितियों को उनके यथार्थ रूप में देखने की योग्यता उत्पन्न होना ही मुक्ति अथवा मोक्ष है और इसे ही निर्वाण कहा गया है। स्वयं को तथा संसार की सारी वस्तुओं को मात्र देखना और उनके प्रति राग-द्वेष का भाव न रखते हुए आगे बढ़ जाना, यही साधना निर्वाण की प्राप्ति में सहायक है। गीता में वर्णित 'समत्वं योग उच्यते' की तरह समता भाव में स्थित होना ही निर्वाण है।

संसार तथा संसार की वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए आवश्यक है स्वयं के वास्तविक रूप को जानना। स्वयं को जान लेंगे तो संसार को जान लेंगे तथा संसार को जान लेंगे तो स्वयं को और अधिक अच्छी प्रकार से जानना सभंव हो सकेगा क्योंकि यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे! यही जानने की एक विधि है विपश्यना। विपश्यना में सबसे पहले हम केवल श्वास के आवागमन पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास करते हैं जिसे 'आनापान' कहते हैं। आनापान के अभ्यास के बाद 'विपश्यना' अर्थात स्वयं का मानसिक निरीक्षण करने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। स्थूल से सूक्ष्म अंतरावलोकन की प्रक्रिया है 'विपश्यना'।

विपश्यना की पहली कड़ी है आनापान जो बहुत ही सरल है। किसी भी आरामदायक स्थिति में बैठकर कोमलता से आंखें बंद कर लें। कमर और गर्दन सीधी रखें और अपना सारा ध्यान अपने श्वास के आवागमन पर लगा दें। इसमें करना कुछ भी नहीं है मात्र श्वास प्रक्रिया का अवलोकन करना है। श्वास के आने और जाने को देखना है। श्वास की गति को देखना है न कि उस की गति को प्रभावित करना है। संपूर्ण ध्यान श्वास की गति को देखने में लगाना है। इस दौरान ध्यान श्वास प्रक्रिया के अवलोकन से हटकर अन्यत्र केंद्रित हो सकता है अथवा इधर उधर भटक सकता है।

ध्यान विचलित हो सकता है लेकिन साधक को विचलित नहीं होना है। ध्यान भटक जाये तो पुनः शांत भाव से ध्यान को श्वास पर केंद्रित करना है। जो कुछ भी करना है अत्यंत शांत भाव से धीरे-धीरे करना है और हर परिवर्तन को ध्यान से देखते हुए करना है लेकिन परिवर्तन से किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होना है। प्रारंभ में विपश्यना में पहले पूरे तीन दिनों तक आनापान का अभ्यास ही करना होता है क्योंकि इससे ध्यान को केंद्रित करने में सहायता मिलती है। आनापान द्वारा मन पर नियंत्रण कर एकाग्रता का विकास करना सरल है।

जे. कृष्णामूर्ति भी यही कहते हैं कि मन पर नियंत्रण रखने का एक ही उपाय है कि उसे बांधिये मत। उसे विचरने दीजिये। आप कुछ मत कीजिए सिर्फ साक्षी बने रहिए। इस प्रक्रिया में आप पाएंगे कि आपका उच्छृंखल मन शांत होकर आप के पास लौट आया है। उसके बाद आप आसानी से अपने मन को अपने नियंत्रण में कर सकते हैं। साधना का उद्देश्य भी तो यही है कि हमारा मन वश में हो। एक पालतू परिंदे की तरह मन की उड़ान पर हमारा पूरा नियंत्रण हो। मन गलत दिशा में उड़ान न भरे केवल सही दिशा में उड़ान भरे।

आनापान के बाद शुरू होती है विपश्यना। विपश्यना अर्थात विशेष रूप से देखने की प्रक्रिया। विपश्यना शरीर के विभिन्न

है विपश्यना भी

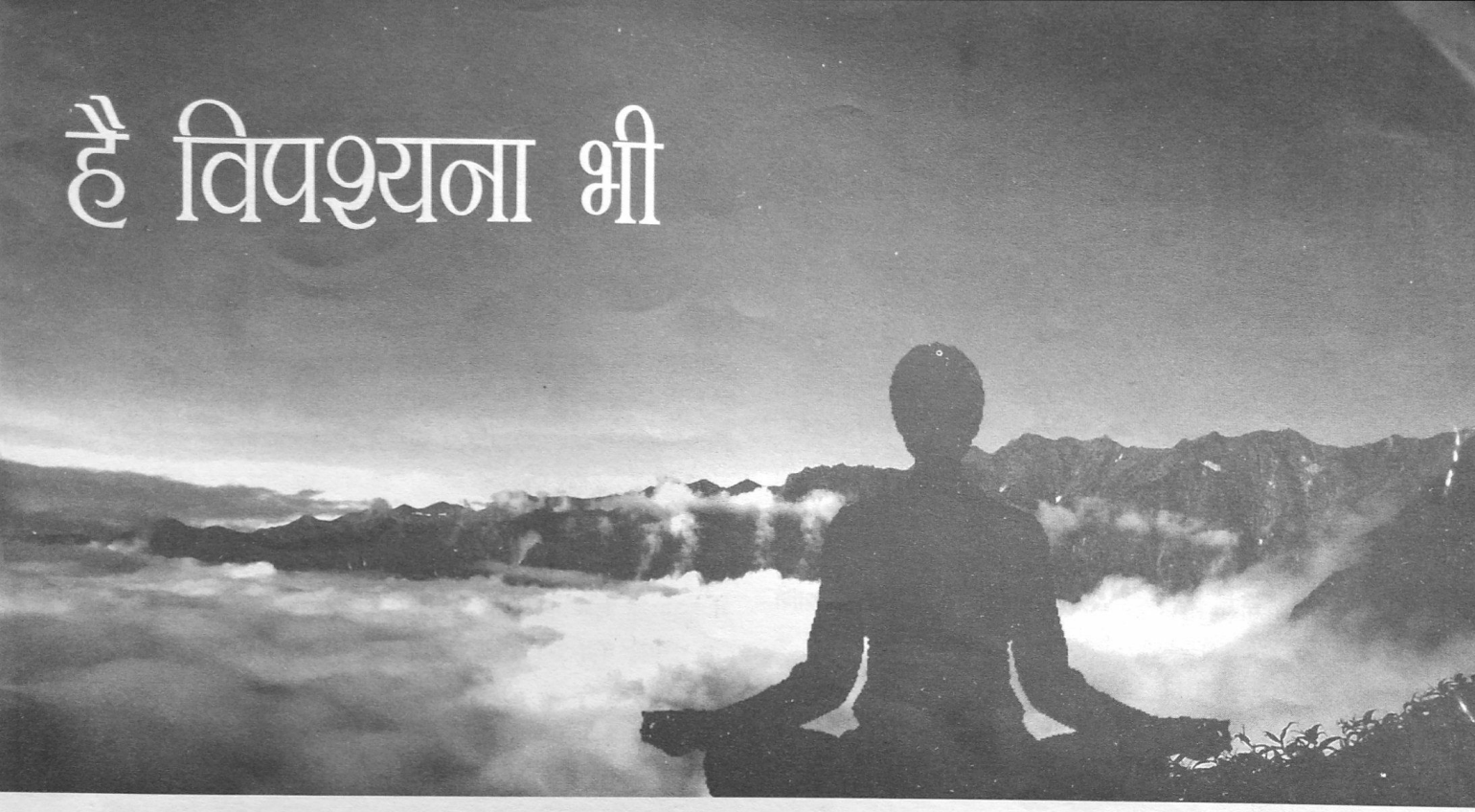

अंग-प्रत्यंगों के मानसिक निरीक्षण की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया प्रारम्भ होती है सहस्त्रार से। सबसे पहले सहस्रार को ध्यानपूर्वक देखना है। एक बार उसका स्पंदन पकड़ में आ जाए तो उसका निरीक्षण कर फौरन आगे बढ़ जाना है। सहस्रार के बाद मस्तिष्क और चेहरे का अवलोकन। एक-एक अंग को ध्यानपूर्वक देखते हुए आगे बढ़ना है। कान, नाक, आँखें, होंठ, गाल और चिबुक सबको ध्यानपूर्वक देखते हुए आगे बढ़ना है। जो जैसा भी है उसको देखना और आगे बढ़ जाना। बिना अच्छे-बुरे का निर्णय किए, बिना सुख-दुःख का अनुभव किए बस देखना और आगे बढ़ जाना, यही तो साक्षी भाव है। यही साक्षी भाव ही विपश्यना है।

चेहरे के बाद गर्दन का अवलोकन और गर्दन के बाद कंधों और पीठ का अवलोकन। इसी तरह गर्दन के बाद दोनों बाहों से एक साथ ध्यान गुज़ारते हुए हाथों और हाथों की उंगलियों के पोरों तक की मानसिक यात्रा। वापस गर्दन और गले को देखते हुए नीचे वक्षस्थल और उदर का अवलोकन। हृदय, यकृत और गुर्दों का अवलोकन तथा पाचनतंत्र का अवलोकन। इसके बाद सारा ध्यान कूल्हों पर। कूल्हों से नीचे उतरते हुए दोनों जंघाओं से ध्यान गुज़ारते हुए, घुटनों और पिंडलियों से होते हुए टखनों, एड़ियों और दोनों पैरों के तलवों और पूरे पंजों का अवलोकन तथा हर उंगली और उंगली के पोरों का अवलोकन।

हर स्पंदन को देखते हुए आगे बढ़ना, कहीं नहीं रुकना। पुनः सिर से लेकर पैरों की उंगलियों तक लगातार बार-बार ध्यानपूर्वक अवलोकन। अब इसका विपरीत क्रम प्रारंभ करना है। नीचे से उपर की ओर। इसका भी बार-बार अभ्यास करें। इसके बाद संयुक्त अभ्यास। पहले ऊपर से नीचे तथा बाद में नीचे से ऊपर एक साथ अभ्यास। इसके बाद दाएं से बाएं तथा बाएं से दाएं ध्यान से देखने का अभ्यास। पर्याप्त अभ्यास के बाद पुनः संयुक्त अभ्यास। इसके बाद आगे से पीछे तथा पीछे से आगे का अवलोकन। पहले गले, वक्षस्थल और उदर का अवलोकन, फिर अंदर के समस्त अंगों का अवलोकन तथा उसके बाद गर्दन, कंधों तथा पीठ का अवलोकन।

ऊपर से नीचे, दाएं से बाएं तथा आगे से पीछे और इसका विपरीत क्रम दोहराते हुए ध्यान से देखते-देखते मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का बोध होने लगता है। स्वः का ज्ञान होना शुरू हो जाता है। देखते-देखते इस भौतिक शरीर की जड़ता, इसकी सघनता, इसका ठोसपन मिटता जाता है और शेष रह जाती है मात्र तरंगों की अनुभूति। पूरा शरीर, शरीर का हर अंग-प्रत्यंग मात्र तरंग रूप दृष्टिगोचर होने लगता है। यही विपश्यना है। ठोस शरीर को निरंतर तंरग रूप में परिवर्तित होते देखना ही विपश्यना है। एक बार अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेंगे तो बाकी संसार को जानने में और उसके बाद जीते जी मोक्ष प्राप्त करने में अर्थात् मुक्त होने में कोई बाधा आ ही नहीं सकती। यही बुद्ध का मुक्ति मार्ग अथवा निर्वाण है।

ए.डी. 106 सी, पीतमपुरा, दिल्ली-110034.

और वह जीत गया

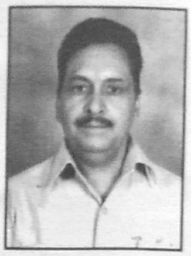

डॉ. दयानन्द गौतम

आज की रात सच, रवि कुमार के लिए एक परीक्षा से कम न थी, जब उसे अपने ही घर के पांचवें माले में घर बनाने के सभी बचे हुए सामान के कबाड़ में गुज़ारनी पड़ रही थी। बाहर न रुकने वाली बारिश, कड़कती बिजली और शिमला की ठण्ड।

जाड़े की यह सिहरती रात एक भयानक सपने से कम न थी। सपना तो आंख खुलते ही टूट जाता है, परन्तु यह सपना किसी कड़वे सच से कम न था।

रवि ने एक धीमी सी रोशनी में अपना हाथ एक टूटे हुए शीशे की धारदार नोक पर पाया। बिना कटे ही उस से कट जाने के अहसास से वह सिहराया सा अपने हाथ को खैंचते हुए एक लहू की बूंद को टपकने के लिए सावधानी से देखता है। हाथ बिना लहू की बूंद के ऐसा ठिठका जैसे बदन का सारा लहू निचुड़ गया हो!

"मैं रवि कुमार ऐसा तो न था, जो हुए और न हुए के अहसास को न जान पाता" यह मर्माराया सा अनकहा सम्वाद उस वीरान रात में कहीं ठहराव की जगह ढूंढ रहा हो, पर वह ठहराव है कहां?

यह सम्वाद और रवि दोनों किसी जगह की तलाश में सहमे से यूं चुपचाप ठहरे हुए रहते हैं, कि कहीं कोई जगह मिल जाए, खैर।

नेपथ्य के बीहड़ में दिखे रवि कुमार, सच सूर्य जैसा ही दिव्य रहा है। हो सकता है बाल हनु की भूख की तरह एक बार उसे काल प्रताड़ना ने अकेला कर दिया, पर क्या हिम्मत के इन्द्र वज्र से वह बाहर निकल कर अपना लोहा मनवाता रहा हो। पर आज कितना अहसास, अकेला और बहुत घिरे हुए कबाड़ के बीच चुपचाप बिना कहे ही दर्द का अहसास लिए नितांत निर्जीव सा। रवि ने धीरे से शीशा हटाया-सच हाथ कट जाता तो दर्द होता, लहू भी बहता। दर्द का अहसास कई दिनों तक कराता रहता यह शीशा।

"सच यह शीशा एक सम्बन्ध जैसा ही तो है, नपा-तुला, स्वरूप-रेख में हुआ तो सज गया आईना कहलाये, पर टूट गया तो जुड़ाव से गया, पड़ा रहा ओर-छोर में मेरी तरह।"

एक घना कनफोडू संगीत उठा। जिसने तीसरे माले से पांचवें तक सारी खामोशी एकाएक पी ली। यह क्या डरावना संगीत? हां! जिज्ञासा ने जैसे समाधान ढूंढा! अरुण के दफ्तर के लोगों की दम्पत्ति सहित बड़ी पार्टी! तभी तो मेरा बिस्तर बहादुर से उठवा कर यहां फैंकवा दिया था बड़ी बहू ने अरुण के कहने पर। पापा तो औड लगेंगे हम सभी के बीच।

रवि कुमार इस उठा-पटक का आदी हो गया था। एक-दो बार नहीं यह दो साल के अन्तराल में पांचवां अवसर था। पहले एक सेट किराये के बहाने कमरा खाली करवा कर अकेले कमरे में रखवा दिया था बिस्तर और हल्का-फुल्का दूसरा सामान। फिर दूसरा बहाना, तब तीसरा और चौथा ड्राईंग रूम फिर आज यह कबाड़ और भयावह रात! सेवा निवृत्ति के 20 वर्षों बाद यह पांचवां आशियाना! चारों ओर नज़र दौड़ाई, आंखें क्या देखे? सरिया के कटे-टूटे आड़े-तिरछे टुकड़े, टूटे हुए पी.बी.सी. के फ्लोर ट्रैप, जी.आई. पाइप्स के बिना मुड़े शाक्ट्स और क्या-क्या?

रात कैसे कटे? बिना शौचालय के.....। फिर खयाल आया, हां यहां एक टॉयलेट शीट थी जो चौकीदार के लिए लगवाई थी। धीरे से उठ कर हल्की रोशनी में वाशवेसिन में हाथ धोने का क्रम किया, यह क्या इतने सारे

रवि कुमार! आंखें धुंधयाईं! सहम कर फिर देखा। आईना कई टुकड़ों में टूटा हुआ एक रवि कुमार को जोड़ने में असमर्थ दिखता रहा!

सहम कर हाथ खैंच एक गन्दी सी जगह में विस्तर लगा कर अतीत की यादों की जुगाली में आंखे बन्द करने की कोशिश में यौवन की बगिया में यामिनी अपने अरुण-वरुण के साथ खड़ी मुस्काती दिखी। मैं इठलाता अपने भाग्य पर! समय गुज़र रहा है। रवि कुमार ए. जी. में सहायक एकाउंटेंट। पैतृक सम्पत्ति। इकलौता बेटा दो मंज़िल मकान, दो बच्चे, बीबी, एक भरा खज़ाना खुशियों का, एक महल सपनों का, एक महक गुलिस्तां की। न जाने किस की नज़र लगी 40 की उम्र में बिन बादल से जैसे आकाशीय बिजली गिरी, यामिनी अपने चार-चार वर्षों के कुमारों को 32 वर्ष की उम्र में छोड़ चल बसी एकाएक उड़ती धूप की तरह। सच काले सपनों की काली करतूत ने चौगान (बाग) खेल-खेल में ही मेरी जीवन बगिया को एक मदमस्त हथिनी की तरह उजाड़ दिया। नौकरी, बच्चे, अकेलापन, ढलती उम्र, पूरा समाज और दायित्व के पहाड़ पर अकेला रवि अस्त नहीं हुआ, प्रकाशमान होता रहा जीवन संध्या तक। बच्चों की खातिर अविवाहित रहा। घर बार बनवाया, अरुण और वरुण दोनों राजपत्रित पद अधिकारी बन जीवन व्यतीत करने लगे। दोनों बहुएं कॉलेज में प्राध्यापिकाएं, पोते-पढ़ने लगे डॉक्टरी-इंजीनियरिंग और मैं एक कबाड़, कबाड़ के साथ अकेला, टूटे शीशे के हज़ारों चेहरों के बीच सम्बन्ध तलाशता।

"आज मैं औड .....।" "औड"?

अपने ही पुत्रों, पुत्र वधुओं के बीच?

कितनी कामनाएं, व्रत, तीर्थ, उपवास करती है माताएं पुत्रों के लिए। पुंमे नामक नरक से पार करवाने के लिये? यह रात नरक से कम है क्या? वह नरक तो रवि अकेले ही पार कर जाता पर यह नरक'.....।

पिता पुत्र की गाथा में पुरु ने अपने पिता ययाति को यौवन दिया था। पिता की गोद की चाह में ध्रुव परम पिता परमात्मा से मिल गया था। पिता की आज्ञा से परशुराम ने मां रेणुका का मस्तक काट दिया था। यह रिश्ता, यह सम्बन्ध, यह नाते कितने थोथले, घिनौने और अमानुषीय होते जाते है, समय के अन्तराल में। मैं वहीं खड़ा हूं या थोड़ा खिसक गया हूं या खिसकना चाहते हुए भी खिसक नहीं पाता ...। मैं विवश हूं शोर हटा, रात कटी, नींद टूटी, जाग लौट आई। एक प्रश्न अनुत्तरित रहा। छत में लटके मधुमक्खियों के छत्ते में शहद वो कितना मीठा है, पर ये मधुमक्खियाँ इतनी बुरी। नासूर बना है, दबाना पड़ेगा, मांस घाव बना है स्राव करवाना ही पड़ेगा!

दूसरा दिन लौट आया। शाम हुई। दोनों माले में भाइयों की चहल कदमियां जाग उठी। रवि ने किसी मित्र से पचास हज़ार उधार लिए और दोनों लड़कों को बहुओं सहित बैठाकर कहा- "अरुण-वरुण अब तुम भी अधेड़ हुए जा रहे हो, दफ्तर, यह नौकरी ही जीवन नहीं होता, जाओ थोड़ा भारत दर्शन करो"

"पापा, समय तो निकल जाएगा, पर हाथ थोड़ा तंग है!" वरुण ने कहा "अरे बेटा सरकार, एल.टी.सी. देती है। उसका फायदा उठाओ।"

"अरे पापा वह तो टी.ए. में ही निकल जाता है, और खर्चा भी तो होता है।" अरुण ने बात आगे बढ़ाई।

"उसका प्रबन्ध मैं किए देता हूं। यह लो 25-25 हज़ार, घूम-फिर आओ। बच्चों का भी मन बहल जाएगा।" शब्द जाल एकाएक ठीक पड़ गया। रवि कुमार उठ कर बाहर की ओर चल दिए। एक साथ कई प्रश्न दाग कर! "इस बुड्ढे के पास एकाएक इतना पैसा कहां से आया? पैंशन तक तो हम ऐंठ लेते हैं, किसी न किसी बहाने।" छोटी बहू ने अपनी दलील दी।

"मैं कहती थी न ये बूढ़े बड़े शैतान होते हैं।" बड़ी बहू बुदबुदाई, छोटी ने हामी भरी "दीदी आप ठीक कहती हैं।"

उधर बेटे भ्रमण करने गये। इधर रवि कुमार अपनी ऊष्मा से खुद ही तपते रहे। मित्रों से नहीं मिले। चिंतन किया, चिंता नहीं गई। अतीत खंगाला, वर्तमान नहीं सुधरा। इस कशमकश में भविष्य अवश्य सुधरेगा। अतीत की भट्ठी में तर्कों के कई तराशे काष्ठ परोसे। आग की ज्वाला जल कर कोयला न बन पाई, अभाव के रेगिस्तान में कई बौछारों का सींचन किया, मृग तृष्णा न हटी। रिश्तों की चादर में स्नेह की टांक लगाने की नाकाम कोशिश की टूटन ही हाथ लगी, पानी की तैराई में डंडे की चोट से पानी अलगाना चाहा पर वह बह रहा है। हज़ारों आईनों में चेहरा अक्स देखना चाहा, काली परछाई ही नज़र आती रही। यह कैसा अन्तर्द्वन्द्व है? उमीद की तलहटी को कैलाश बनाने चला था टीला भी जगमगाने लगा। सृष्टि की प्रक्रिया में नाम के बन्धन से पुत्रकामेष्ठी यज्ञ की आहुति में चरु नहीं, अग्नि की आहुति अग्नि शमन करने की प्रक्रिया का यथार्थ सामने लाया।

रवि ने अपनी सारी सम्पत्ति, घरबार बेच कर खुद को एक संस्था के साथ जोड़ कर खुद को खोजने का रास्ता शुरू किया और बेटों को एक पत्र घर के नये मालिकों के हाथ थमा दिया था।

अरुण और वरुण भारत दर्शन से लौट अपने सजे संवरे घर को देखते हैं। अपने फ्लोर के पर्दों को देख छोटी बहू चहचायी, कहती है- "दीदी पापा ने पर्दे भी बदल दिए, कहाँ से बरस रही है, यह लक्ष्मी उनके पास?" बड़ी बहू ने हामी भरी, आगे बढ़ते ही रवि कुमार के स्थान अरविन्द अग्रवाल की नेम प्लेट पढ़ कर ठिठक कर रह गई।

हम कहीं गलत घर तो नहीं आए?

यह अरविन्द अग्रवाल कौन?

बैल दी। अन्दर से अन्जान व्यक्ति को देख दोनों सहम कर रह गईं। पीछे अरुण-वरूण इस दृश्य से अवाक् से रह गये, खैर....

"यह पत्र दिया है आप को मालिक ने"?

"कौन मालिक? आप कौन हैं"? वरुण ने कहा।

"जी रवि कुमार साहब ने। यह घर हमने खरीदा है।" उस ने धीरे से जवाब दिया।

अरुण ने झट से पत्र लिया। घर खरीदा है? मीन्ज, "आप अन्दर आएं मैं सब बताता हूं !" नये मालिक का आमन्त्रण था।

सभी अन्दर नए सुसज्जित सोफे पर बैठते हैं। अरुण ज़ोर से पत्र पढ़ने लगा।

मेरे अरुण-वरुण, सदा प्रसन्न रहो !

आप की यात्रा सकुशल रही होगी। मैं भी अब अपनी कुशलता समझ रहा हूं। साठ दशक का जीवन जी लिया। भाग-दौड़, नाम, धन-सम्पत्ति की ज़िन्दगी में दौड़ते-दौड़ते थक रहा हूं शायद। अब विराम ले रहा हूं। मैंने अपनी सारी भौतिक सम्पत्ति अग्रवाल भाइयों को बेच कर तुम्हें कुछ नया करने का दायित्व सौंपा है। तुम दोनों भाई, दोनों बहुएं समर्थ हैं। अपनी भूमि तलाश करो। घर की नींव रखो। उस में अपना सम्बन्ध ढूंढो। तुम्हारे भी दो-दो सन्तानें हैं। उनका पालन-पोषण करो। पर मेरी तरह उन के साथ व्यवहार के लिए उन्हें तैयार मत करना। मैं खुद को ढूंढ रहा हूं। अब मैं तुम्हें न मिल पाऊंगा। अब निकल गया हूं किसी अन्जान गंतव्य की ओर। खैर स्वस्थ रहो। अपनी तलाश का मार्ग ढूंढो।

तुम्हारा निर्वासित बाप!

पत्र नहीं आकाशीय बिजली थी, जो एकाएक बरस पड़ी। सभी ने पत्र सुना, अवाक् से गुमसुम सामने पड़ी चाय और विस्कुट को लेने या न लेने में असमर्थ से दिख रहे थे! अरुण ने कहा---वरुण उठो, चलते हैं।

विभागाध्यक्ष हिन्दी, महाविद्यालय, कुल्लू ।

बौद्ध दर्शन में नारी की गरिमा

डॉ. अशोक कुमार

ब्राह्मण की जननी, लावण्य, असंख्य शक्ति का आधार, माधुर्य गुणों से युक्त प्रेम की मूर्ति नारी से ही संसार की सम्पूर्ण शक्तियों का जन्म होता है। नारी शक्ति ऐसी शक्ति है जो जीव लोक में प्राण का पोषण करती है। भारतीय समाज में नारी प्रत्येक परिवार में घर का केंद्र है, नारी की स्थिति गरिमामयी रही है। आज संसार के अधिकतर देशों में स्त्रियाँ अपने रुढ़िवादी परम्परा को तोड़ कर बाहर निकलने की चेष्टा कर रही हैं; लेकिन व्यावहारिक धरातल पर सूक्ष्म विश्लेषण किया जाए तो प्रतीत होता है कि भारतीय समाज में बेटी, बहन, माँ, पत्नी का अस्तित्व है, यदि उस का व्यक्तित्व पुरुष के साथ जोड़ दिया जाए तो क्या नारी का अस्तित्व है? इसी प्रश्न को ले कर आज से हज़ारों वर्ष पूर्व नारियों की शोचनीय स्थिति जो पुरुष प्रधान समाज में घर की चार दीवारी में कैद रहती थी। आज इक्कीसवीं सदी में स्त्रियाँ घर के चौखट को पार कर के विश्व उन्मुक्त प्रांगण में प्रवेश कर रही हैं। भारतीय समाज में सत्यवान-सावित्री की कहानी, सीता की अग्नि परीक्षा, सती प्रथा का प्रचलन, देवर द्वारा मीरा बाई पर अत्याचार इस बात का प्रतीक है कि तब भी कई समाज में स्त्रियों की दशा दयनीय थी। लेकिन मैं सौभाग्यशाली मानता हूं कि इस पावन भूमि में ऐसे प्रबुद्ध पुरुषों ने भी अवतार लिए हैं जिन्होंने न केवल अपनी देशनाओं से इस धरती को सुवासित किया, अपितु स्त्रियों को भी अपने संघ में स्थान दिया। भगवान बुद्ध के संघ में पुरुषों की भांति स्त्रियाँ भी भिक्षुणी बन सकती थी। बुद्ध ने स्त्रियों की कभी निंदा नहीं की। अपने अनुयाइयों और मध्य मार्ग का अनुसरण करने वाले गृहस्थों को यह उपदेश दिया था कि स्त्रियों को अपना मित्र समझ कर उन पर विश्वास करो। यद्यपि भगवान बुद्ध ने अविवाहिता जीवन को श्रेष्ठ माना है, क्योंकि इसमें भिक्षु सात्विकता का अनुसरण कर अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। भगवान बुद्ध ने स्त्रियों के लिए पति की आज्ञापालन की अपेक्षा पुरुषों को यह उपदेश दिया था कि वे अपनी पत्नियों के विश्वास पात्र रहें। बौद्ध दर्शन के अनुसार स्त्रियों को निर्वाण प्राप्त करने का अधिकार पुरुषों के बराबर है। ऐसा कह कर बुद्ध ने न केवल नारियों के स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा की, अपितु स्त्रियों को भी पुरुषों के समकक्ष रखा।

भगवान बुद्ध ने एक स्त्री की प्रशंसा करते हुए कहा है- "यह महिला सांसारिक वातावरण में रहती है और राजरानियों की कृपा पात्री है, तो भी इस का हृदय स्थिर और शांत है। उसकी अवस्था युवा है और वह धन तथा ऐश्वर्य से घिरी है, फिर भी वह कर्त्तव्य पथ में अविचल और विचारशील है।" आज हमें नारियों की मर्यादा को बनाये रखने में महात्मा बुद्ध के योगदान को स्वीकार करना होगा। मानव समाज की सभ्यता चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र में हो या सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में, सदैव पुरुषों के हाथ रही है। आज की नारी कर्मशक्ति, ज्ञानशक्ति और शासनशक्ति से पूर्णतया सम्पन्न है। उनकी सहज बुद्धि आज केवल एक परिवार में नहीं बल्कि मानव जाति की रक्षा में सक्षम है। देश के व्यवस्थापक, समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक जब-जब व्यवस्था को बदलने की बात करते हैं, यह तब तक सम्भव नहीं है, जब तक व्यवस्था में नारी अपमानित और अनादृत है।

गौ सेवा से गोलोक की प्राप्ति

पंडित रोशन लाल शास्त्री

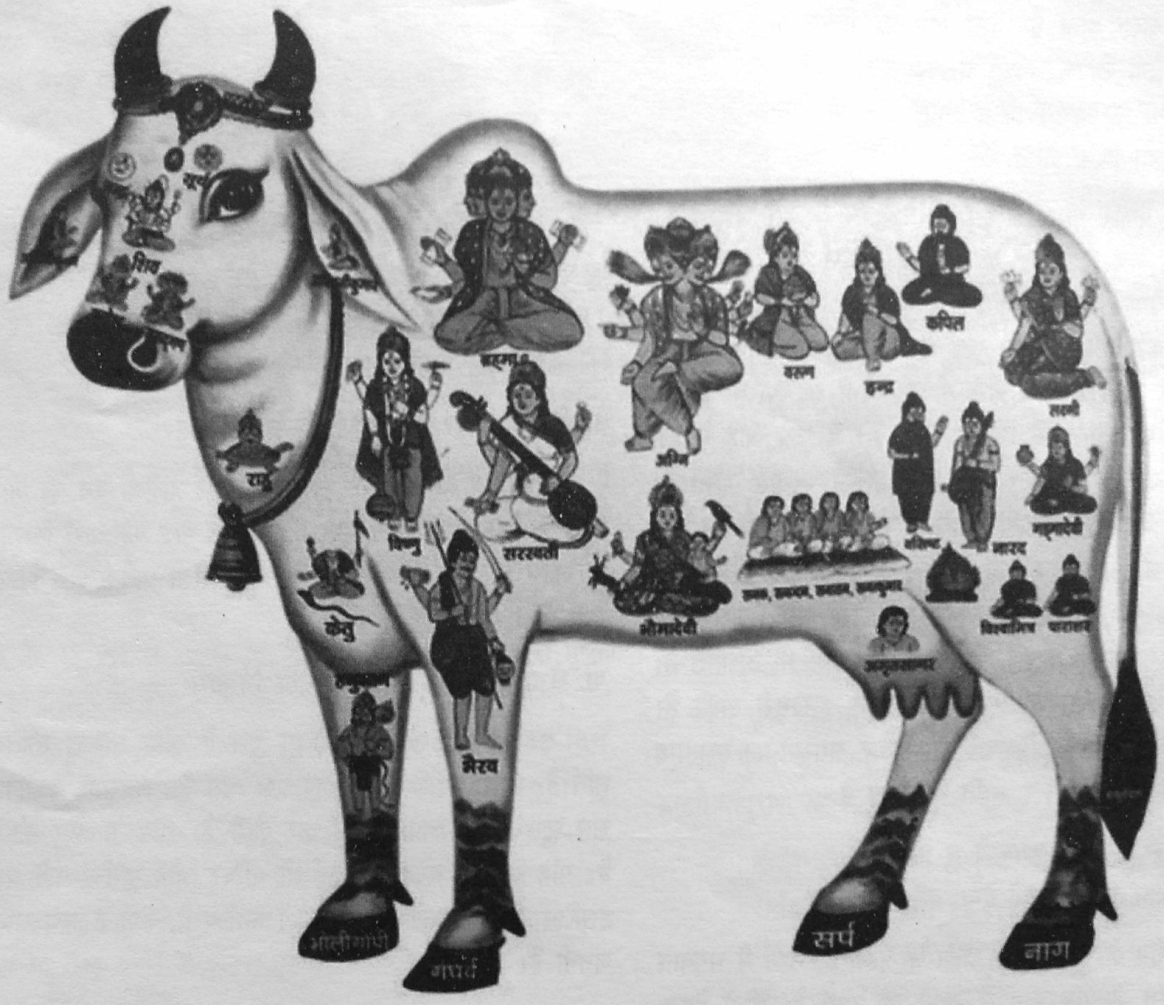

गाय क्या है क्या यह साधारण पशु है, इसे बेघर व लावारिस छोड़ना हिन्दू धर्म में है, गाय के ऊपर किसी भी तरह का अत्याचार करना मनुष्य के लिए उचित था, है, या होगा? द्वापर की समाप्ति और कलयुग के आरम्भ में भी गाय के ऊपर अत्याचार हुआ जिसकी रक्षा राजा परीक्षित ने कुछ हद तक की परन्तु आज के समय में मनुष्य जाति के सिर पर कलयुग ने अपना अधिकार इस तरह कर लिया है कि गाय को टाईम पास पशु बना लिया है। गाय शब्द का अर्थ क्या है- नास्तिको वेदनिन्दकः। जगत कल्याणी और वेदों का मूल गाय है। क्योंकि भविष्य का आधार भी गाय है, जो मनुष्य वेदों को नहीं मानते उनके लिए गाय शब्द भी निरर्थक है। वे नास्तिक बन जाते हैं उनका कहना होता है- परलोक क्या है, पुनर्जन्म नहीं होता, वेद मन्त्रों में शक्ति नहीं होती है। जिन प्राणियों में विश्वास, निष्ठा, आस्था व धार्मिकता न हो वे नास्तिक हैं।

हिन्दू शब्द अपने आप को चौंकाने वाला है। जो गौ रक्षा के लिए, गोहित के लिए और गाय में सच्ची श्रद्धा हो, वह हिन्दू है। कई घरों में आज भी गाय के गोबर, गोमूत्र से चुल्हा-चौका किया जाता है। गाय के गोबर से लिपा हुआ घर हो, झोंपड़ी हो, उसमें रहकर जो आनन्द आता है, वैसा आनन्द अन्यत्र नहीं; उस घर में स्वयं श्री हरि वास करते हैं। गाय बहुत शान्ति और आनन्द में रहने वाला प्राणी है। गाय आर्थिक समृद्धि का भी आधार है। बिना गाय के आर्थिक समृद्धि सम्भव नहीं है। जो गौ सेवक हैं उन्हें गाय के गव्य पदार्थों से प्रभूत सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। गाय के द्वारा उत्तम अन्न प्राप्त होता है। जो गाय की सेवा करता है, उसको श्री कृष्ण को प्राप्त करने का भाव उत्पन्न हो जाता है। इसका प्रमाण शास्त्रों में भी मिलता है। आदि पुराण में भगवान वेदव्यास ने लिखा है नित्य गोसेवा करने वालों को श्री कृष्ण की प्राप्ति हो जाती है।

श्री कृष्णः प्राप्यते विप्र नित्यं गोकुलसेवया। चरकसंहिता (सूत्र 27/217) में गाय के दूध के दस गुणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है- 'स्वादु शीतं मृदु स्निग्ध बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्। गुरु मंदं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः।।' गाय का दूध स्वादिष्ट, शीतल, कोमल, गाढ़ा, श्लक्ष्ण, लसदार और बाह्य प्रभाव को विलम्ब से ग्रहण करने वाला होता है। देशी गाय का गोबर भी उपयोगी है, मूत्र भी उपयोगी है। हर वस्तु उसकी उपयोगी है। देशी गाय के दूध की महिमा का वर्णन किया जाए, ठीक से समाज में उसको प्रचारित-प्रसारित किया जाय।

इस प्रकार गाय को हम अपने हृदय में बसा लें तो वह दिन दूर नहीं, जब गोवंश के वध का कलंक इस देश से सर्वदा के लिए मिट जायेगा। आज के समय में गाय जिसे गौमाता कहते हैं उसे बेसहारा कर दिया गया है। जब तक गाय दूध देती है तब तक गाय को पाला जाता है गाय जैसे ही दूध देना बंद करती है तब एक दम गाय को जंगल के किनारे छोड़ देते हैं उसे चाहे जंगली जानवर खाए या भूख प्यास से मर जाए इसकी परवाह किसी को नहीं है। भारत वर्ष में जहां गाय की पूजा की जाती है वहीं पर गाय के मांस खाने का भी परहेज नहीं करते। आजकल चाहे छोटे शहरों में, गांव में, कस्बों में जाएं हर जगह लावारिस गाय नज़र आती है। गाय की असुरक्षा के कारण ही यह धरती माता भी अशान्त है। गाय की असुरक्षा का कारण अधर्म, अत्याचार, भुखमरी आदि हैं। सनातन धर्म व सरकार को मिलकर इस विकट समस्या का समाधान निकालना चाहिए। बृहत्पराशर स्मृति में लिखा है:---

शृंगमूले स्थितो ब्रह्मा शृंगमध्ये तु केशवः।
शृंगाग्रे शंकरं विद्यात त्रयो देवाः प्रतिष्ठिताः।।

गाय के सींग के मूल भाग में ब्रह्मा जी रहते हैं, मध्य में भगवान केशव और सींग के अग्र भाग में शंकर जी रहते हैं। तीनों देवता गौमाता में प्रतिष्ठित हैं।

गाय के भिन्न त्रिदेव नहीं हैं। आदिगऊ सुरभि से इनका प्राकट्य कहा गया है। धर्म का जन्म गाय से है, क्योंकि धर्म है जो, वह वृषभ रूप है और गाय के पुत्र को भी वृषभ कहा जाता है। नील वृषभ के रूप में धर्म प्रकट हुआ है। अन्न की प्रसूति के लिए ही धर्म ने धारण किया वृषभ का रूप, क्योंकि बिना वृषभ के खेती सम्भव नहीं है। उत्तम अन्न उसी से उत्पन्न होता है। महापातकी जीव भी श्रद्धा से गोवंश की सेवा करने लग जाए तो पापों से रहित हो जाता है और गोलोक में जाकर वह सुशोभित होता है। गौ सेवा करने वालों को गोलोक की प्राप्ति होती है।

गाय का स्मरण करके, गाय को नमस्कार कर के जो गाय की प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो सातों द्वीप और सात समुद्र वाली पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर ली। जो गाय को केवल चारा डाल दे, जल पिला दे अथवा नित्य ग्रास अर्पित करे तो वह सौ अश्वमेध के समान पुण्य प्राप्त करता है।

गाय की पीठ पर हाथ फेर दिया, बढ़िया से उसको खुजोरा कर दिया, उसको मक्खी-मच्छर से बचाने के लिए आपने गोशाला में धुआं कर दिया तो नित्य ऐसा करने वालों को नित्य कपिला गाय के दान का पुण्य प्राप्त होता है। गोदान करने वाला तो जीवन में कुछ ही दान करेगा, लेकिन निष्काम भाव से गोसेवा करने वाला तो नित्य गोदान का पुण्य पाता है।

एक गोमाता की सेवा को हम सावधानी पूर्वक साध लें तो एक गाय के पुष्ट होने से सारा समाज पुष्ट हो जाएगा, कहीं कोई कुपोषण-अपोषण नहीं रह जाएगा, पर दुःख एवं दुर्भाग्य की बात है कि कैसी बुद्धि हो गई, कैसे विचार हो गए लोगों के कि इन बातों को कहने पर वे तो ध्यान ही नहीं देते।

अर्थ का सच्चा सदुपयोग है-गो सेवा:--

सौ वेदज्ञ ब्राम्हणों को भोजन कराकर दक्षिणा देने का जो फल प्राप्त होता है, वही पुण्य फल केवल एक गाय को चारा खिलाने से हो जाता है। गाय के गोष्ठ में की जाने वाली प्रत्येक शुभ क्रिया सौ गुनी पुण्य फलदायी हो जाती है।

गो सेवा से चारित्रिक गुणों का विकास:--

सहनशीलता साधु का पहला गुण है और साक्षात् तितिक्षाकी मूर्ति है- गाय। इसलिए गाय का एक नाम है- सर्वसहा, क्योंकि यह सब कुछ अपने ऊपर सहन कर लेती है। गाय भगवान की मूर्ति है। यदि गाय की रक्षा नहीं हुई तो मन्दिर और मूर्तियां नहीं बचेंगी, इसलिए गाय की रक्षा करना मुख्य कर्त्तव्य है, क्योंकि गाय धर्म की जननी है।

भगवान की अनन्य भक्ति करने से शील गुण आ जाता है और भगवान का प्रतीक है- गाय, इसलिए गाय की सेवा करने से भी शीलगुण आ जाता है।

राष्ट्र हित :--

गो रक्षा में ही राष्ट्र का विकास है, राष्ट्र का हित है एवं राष्ट्र की वास्तविक उन्नति है, समृद्धि और सम्पन्नता है। ग्राम पंचायत, नगरपालिका, नगर-परिषद् आदि के स्तर पर सरकार की ओर से गो सदन खोले जाएं तो इस प्रकार से लाखों लोगों को रोज़गार तो मिल जाएगा और बहुत बड़े-बड़े जंगल और पहाड़ आज भी हैं, उनका उपयोग गोचारण के लिए किया जा सकता है। इस तरह से बहुत बड़ा कार्य किया जा सकता है।

सेवा का एक प्रमुख स्वरूप है- गो सेवा। गाय रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, अदिति पुत्रों की बहन और घृतरूप अमृत का

खज़ाना- माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽदित्यानाममृतस्य नाभिः। वह परम दयामयी, वात्सल्यमयी तथा सुर-नर-मुनिसेविता है। वह सदा पवित्र और सबका कल्याण करने वाली है- सामवेद संहिता में लिखा है 'सदा गावः शुचयो विश्वधायसः' उससे कोई भी उऋण नहीं हो सकता। उसकी सेवा से गो सेवक निष्पाप हो जाता है। गो खुर से उड़ती हुई धूलि से आच्छादित आकाश पृथ्वी को ऊसर होने से बचाता है। गाय जहां पानी पीती अथवा जिस जल से पार होती है, वहां सरस्वती जी विद्यामान होती है- 'यत्र तिर्थे सदा गावः पिवन्ति तृषिता जलम्। उतरन्त्यथवा येन स्थिता तत्र सरस्वती।।' भगवत्सेवा, पूजा-उपासना, व्रत-उपवास, त्याग-तपस्या, दान-दया, सत्या-अहिंसा, सेवा-संयम, तीर्थ-दर्शन और गंगा स्नान आदि के करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सारा का सारा पुण्य केवल गो सेवा करने से सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

केवल पारमार्थिक ही नहीं, लौकिक समृद्धि में भी गोवंश का उल्लेखनीय योगदान है। भारतीय कृषि एवं अर्थ व्यवस्था का तो वह आधार ही है। गाय अपने दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र, हड्डी, चमड़ा आदि से हमारा सब प्रकार का हित-कल्याण करती है। गोधन के बराबर जगत् में अन्य कोई धन नहीं है। वेद व्यास जी महाभारत में कहते हैं- 'गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चित्दिहाच्युत' इस संसार में गायों के समान दूसरा कोई धन नहीं। इन के नाम तथा गुणों का कीर्तन-श्रवण इन का दान तथा इन का दर्शन ये सारे कार्य सम्पूर्ण पापों को दूर करके परम कल्याण प्रदान करने वाले हैं। गोवंश के प्रताप से ही भारत की भूमि सोना उगलती थी तथा विश्व में सोने की चिड़िया कहलाने का गौरव प्राप्त था।

इनकी स्तुति में कहा गया है- 'त्वं माता सर्वदेवानाम् त्वं च यज्ञस्य कारणं। त्वं तीर्थं सर्व तीर्थानां नमस्तेःस्तु'। यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि स्वतन्त्रता के 64 वर्षों के उपरान्त भी गोवध पूर्णरूपेण प्रतिबन्धित नहीं है। देश के गो-भक्तों को सत्याग्रहों, उपवासों और आन्दोलनों का आश्रय लेना पड़ रहा है। जनता-जनार्दन का यह आग्रह कदाचित् नीति-नियन्ताओं की आंखे खोल सके-

दूध पिलाती है छोटे-बड़े इन्सान को।
साथ नहीं उसके छल-छन्द हो।।
है जिसका हर अंग परार्थ।
न दे दुःख कोई उसे मतिमन्द हो।।
पूज्य है जो जननी के समान।
नहीं उसके हित घातक फन्द हो।।
देश की है ये पुकार अमन्द।
कि गोवध बन्द हो गो हत्या बन्द हो।।

गो को घास खिलाना कितना पुण्यदायी है!

तीर्थ स्थानों में जाकर स्नान-दान से जो पुण्य प्राप्त होता है, ब्राह्मणों को भोजन कराने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, सम्पूर्ण व्रत-उपवास, तपस्या, महादान तथा श्रीहरि जी की आराधना करने पर जो पुण्य प्राप्त होता है, सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा, सम्पूर्ण वेदों के पढ़ने तथा समस्त यज्ञों के करने से मनुष्य जिस पुण्य को पाता है, वही पुण्य बुद्धिमान पुरुष गौओं को घास खिलाकर पा सकता है। ब्रम्हवैवर्तपुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड 21/17/89 में लिखा है-

तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्र भोजने।
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च।।
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
भुवः पर्यटने यतु वेदवाक्येषु यद्भवेत्।।
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः।
यत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्वा तृणानि च।।

गोसेवा से मनोकामनाओं की पूर्तिः—

गो की सेवा अर्थात् गाय को घास डालना, पानी पिलाना, गाय की पीठ सहलाना, रोगी गाय का ईलाज करवाना आदि करने वाला मनुष्य पुत्र, धन, विद्या, सुख आदि जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, वे सब उसे प्राप्त हो जाती है, उसके लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती है। महाभारत के अनु० 83/50/52 श्लोक में लिखा है----

गोषु भक्तश्च लभते यद् यदिच्छति मानवः।
न किंचिद् दुर्लभ चैव गवां भक्तस्य भारत।।

गो सेवा से भूमि दोष समाप्त होता है:—

गौओं का समूह जहां बैठकर निर्भयतापूर्वक सांस लेता है, उस स्थान की शोभा बढ़ा देता है और वहां के सारे पापों को खींच लेता है। महा० अनु० 51/32 में लिखा है----

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्श्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति।।

सबसे बड़ा तीर्थ गोसेवा ——

देवराज इन्द्र कहते हैं कि गौओं में सभी तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य गाय की पीठ छूता है और उसकी पूंछ को नमस्कार करता है, वह मानो तीर्थों में तीन दिनों तक उपवास पूर्वक रह कर स्नान कर लेता है। महा० अनु० 125/23 में लिखा है-

त्र्यहं स्नातः स भवति निराहारश्च वर्तते।
स्पृशते यो गवां पृष्ठं बालधिं च नमस्यति।।

असार संसार के छः सार पदार्थः--

भगवान् विष्णु, एकादशी व्रत, गंगा नदी, तुलसी, ब्राह्मण और गौएं ये छह इस दुर्गम असार संसार से मुक्ति दिलाने वाले हैं। गरुड़ पुराण में लिखा है-

विष्णुरेकादशी गंगा तुलसीविप्रधेनवः।
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी।।

स्कन्द पुराण में लिखा है गौओं, ब्राह्मणों तथा रोगियों को जब कुछ दिया हो, उस समय जो न देने की सलाह देते हैं, वे मर कर प्रेत बनते हैं।

गोपूजा- विष्णु पूजा —

जो मनुष्य अश्वत्थ वृक्ष, गोरोचना और गौ की सदा पूजा, सेवा करता है, उसके द्वारा देवताओं, असुरों और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत की भी पूजा हो जाती है। उस रूप में उसके द्वारा की हुई पूजा को मैं यथार्थ रूप से अपनी पूजा मानकर ग्रहण करता हूं। महा० अनु० 136/56 में लिखा है---

अश्वत्थं रोचनां गां च पूजयेद् यो नरः सदा।
पूजितं च जगत् तेन सदेवासुरमानुषम्।
तेन रूपेण तेषां च पूजां गृह्णामि तत्वतः।।

चारों समान हैं जगत में-

नित्य भागवत जी का पाठ करना, भगवान का चिन्तन करना, तुलसी को सींचना और गौ की सेवा करना ये चारों एक समान हैं।

गो सेवा के चमत्कार-

गौओं के दर्शन, पूजन, नमस्कार, परिक्रमा, गाय को सहलाने, गोग्रास देने तथा जल पिलाने आदि सेवा के द्वारा मनुष्य को दुर्लभ सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

गाय के शरीर में सभी देवी-देवता, ऋषि-मुनि, गंगा आदि सभी नदियां तथा तीर्थ निवास करते हैं। इसलिए गो सेवा से सभी की सेवा का फल मिल जाता है।

ऋषियों ने सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम किया जाने वाला धर्म गो सेवा को ही बताया है।

यात्रा पर जाने से पहले गाय का दर्शन करके जाने से यात्रा मंगलमय होती है।

जिस स्थान पर गायें रहती हैं, उससे काफी दूर तक का वातावरण शुद्ध एवम् पवित्र हो जाता है।

प्रातः काल स्नान के पश्चात् सर्वप्रथम गाय का स्पर्श करने से पाप नष्ट होते हैं।

गो दुग्ध- धरती का अमृत —

गाय का दूध धरती का अमृत है। विश्व भर में गो दूध के समान पौष्टिक आहार दूसरा कोई नहीं है। यह रोग निवारक भी है। गाय के दूध का कोई भी विकल्प नहीं है। यह एक दिव्य औषधि भी है। गाय के दूध का पान एक बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी करते हैं।

पंचगव्य :——

गाय के दूध, दही, गोबर-रस, गोमूत्र का एक निश्चित अनुपात में मिश्रण पंचगव्य कहलाता है। पंचगव्य का सेवन करने से मनुष्य के समस्त पाप उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं, जैसे जलती आग से लकड़ी भस्म हो जाती है।

मानव शरीर का ऐसा कोई भी रोग नहीं है जिसका पंचगव्य से उपचार नहीं हो सकता। पंचगव्य से पापजनित रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

वर्तमान समय में सब कुछ विपरीत है। गो सेवा के स्थान पर गो हत्या और गाय को बेघर करना जैसे लोगों का मकसद सा हो गया है। हर व्यक्ति को चाहिए की आंखों से काली पट्टी हटाकर गो सेवा और गो रक्षा करके विश्व के कल्याण के विषय में विचार कर इस शुभ कार्य में कदम पसार देना चाहिए ताकि गो माता की पूर्णतया सुरक्षा हो सके।

गांव व डाकघर. करसोग, मण्डी।

श्रद्धांजलि

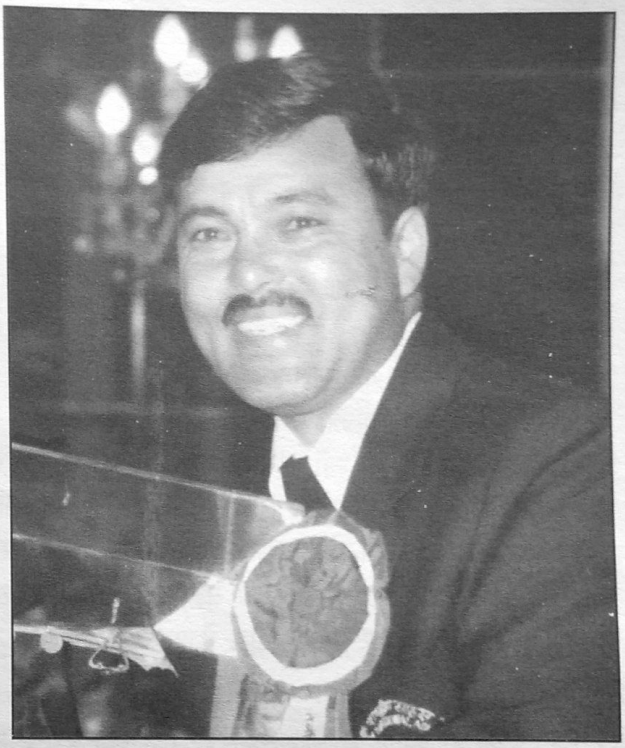

30 अगस्त, 2012 को भारतीय पर्वतारोहण के क्षितिज से एक चमकता सितारा बहुत ही दुःखद दुर्घटना में सदा के लिए ओझल हो गया। केवल 49 साल के सूबेदार अमर प्रकाश, 'शौर्यचक्र' और भारतीय पर्वतारोहण संस्थान के गोल्ड मैडल, पर्वतारोहण में राष्ट्रीय साहसिक खेल पुरस्कार से सुशोभित, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पर्वतारोही मंडी से कुल्लू आते समय गाड़ी का पंक्चर ठीक कराते अचानक गिर गए और सदा के लिए चले गए।

ग्वज़ङ गांव में जन्मे अमर प्रकाश एक होनहार, अत्यन्त निपुण और स्वावलम्बी पर्वतारोही थे। लाहुल में जन्म होने से उनके रक्त में पर्वतारोहण में दक्षता पैदाइशी थी। घाटी के लोगों में पर्वतारोहण में सर्वोच्च हासिल करने की स्वाभाविक सम्भावना है।

मैं ने अमर प्रकाश को 1984 में गुलमर्ग में पहली बार देखा था, जब मैं भारतीय सेना के 1985 एवरेस्ट अभियान के प्रशिक्षण और टीम चयन का शिविर चला रहा था। मैं ने अमर प्रकाश को चौकन्ना, हंसमुख और शारीरिक तौर से अत्यन्त फिट और पहाड़ों में सहजता से रहने वाला पाया। वह उस समय आसाम राईफल में सेवारत थे। शिविर के दौरान अमर प्रकाश का पहाड़ों में, बर्फ में और हिमनद में हरकत अत्यन्त सहज और कलात्मक था। साहस, उत्साह और पर्वतारोहण में निपुणता से वह एवरेस्ट के लिए स्वतः ही चुने गये। लाहुल वासी होने के नाते मुझे खुशी थी कि लाहुल से अमर प्रकाश, प्रेमचन्द और देवी सिंह दल के सदस्य चुने गये। 1995 एवरेस्ट अभियान में अमर प्रकाश का योगदान अधिक ही नहीं बल्कि अभूतपूर्व था। वह अभियान अब इतिहास है। उस एवरेस्ट अभियान के बाद अमर प्रकाश ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा और दो बार एवरेस्ट की चोटी को फतेह कर, न केवल पर्वतारोहण में रिकॉर्ड कायम किया, बल्कि अपना और अपने परिवार व समाज के नाम पर चार चाँद लगाया। एवरेस्ट पर दो बार चढ़ने वालों में उन का नाम स्वर्णमयी अक्षरों में अंकित है और सदैव रहेगा। उस के उपरान्त अमर प्रकाश ने हिमालय, एन्डीज़ (दक्षिण अमेरिका) आदि आरोहण किया और अन्तिम यात्रा से पहले वह कांगो में यूएन मिशन के तहत एक अभियान में थे, जहां पर तबीयत खराब होने के कारण लौटना पड़ा, और वहां से वापिस आकर दुःखद दुर्घटना के शिकार हुए।

उसी बीच उन्होंने 5 साल तक मनाली पर्वतारोहण संस्थान में बतौर प्रशिक्षक काम किया और हज़ारों नौजवानों को इस कला में प्रशिक्षित किया। अपनी कार्यकुशलता से देश के समस्त पर्वतारोहियों में अपना अमिट छाप छोड़ा।

मैं अमर प्रकाश की आकस्मिक मृत्यु की इस दुःखद घटना को स्वयं की महान हानि मानता हूं और भारतीय पर्वतारोहण में एक ऐसा शून्य जिसे भरना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन है।

भगवान बुद्ध से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति दें और उनकी धर्मपत्नी, दो बच्चियों को इस दुःखद घटना को सहने का साहस दें।

मैं लाहुल के इस यौद्धा और सुपुत्र को सल्यूट करता हूं। मुझे विश्वास है कि घाटी की आने वाली पीढ़ियां इन की उपलब्धियों से न केवल गौरवान्वित होंगी, बल्कि प्रेरणा भी लेंगी। मुझे इस में ज़रा सा भी शक नहीं। धन्य है वह माता-पिता जिन्होंने अमर प्रकाश जैसे हीरे को जन्म दिया।

अमर प्रकाश! आप का प्रकाश न केवल भारतीय पर्वतारोहण क्षेत्र में, बल्कि समूचे संसार के पर्वतारोहियों में अमर रहेगा। ऐसा मेरा विश्वास है !!

- कर्नल प्रेम

समस्त चन्द्रताल परिवार की ओर से श्रद्धांजलि एवं सम्वेदनाएं!

- सम्पादक

अब लाहुल की बारी है

विजय कुमार बौद्ध

"प्रोजेक्ट बनने के बाद, लाहुल वालों को तो उन्हीं की ज़मीन से बेदखल कर दिया जायेगा"। यह कहते हुए प्याले से एक लम्बी चुस्की ली उन्होंने। और फिर, खामोशी को चीरती वो चाय की चुस्की भी एकदम शांत हो गई। न जाने क्यों, लगा कि एक अजीब सा विश्वास था उनकी आवाज़ में। एक गंभीर सा सच उनके रखे हर तर्क में। मन तो नहीं हुआ, पर बात माननी ही पड़ी। मानता कैसे नहीं। जानता था कि दार्शनिक नाप-तोल कर ही बोलते हैं। मुलाकात समाप्त हुई। अभी तक दीन-दुनिया के चिन्तन में व्यस्त, मैं अब एक पक्षी सा घर की तरफ चल दिया। फिर, शाम को रिकॉर्ड की हुई वीडियो लेपटॉप में ट्रान्सफर की। वो आवाज़ फिर से बोल पड़ी। एक और बार गुप्प सन्नाटा सा छा गया, हर तर्क नये सिरे से उभर कर आया। सोच में पड़ गया कि कहीं ये सच ना हो .....

अपनी ही ज़मीन से बेदखल?.....मेरा क्या है? मै तो नॉन-रेज़िडेंट लाहुली हूँ। दूर कुल्लू-चंडीगढ़ बैठ राजेश बाबा की ली, भव्य बर्फबारी वाली तस्वीरें फेसबुक पर ही लाइक करता आया हूँ। एल.एस.एस.ए. चंडीगढ़ में ही लाहुल की छवि ढूंढता आया हूँ। इस से ज़्यादा मेरा क्या लेना-देना। पर कहते हैं न कि अगर परस्पर विश्वास और दोस्ती हो तो एक मछवारे का सही मार्गदर्शन दूसरा मछवारा भली-भांति कर सकता है। क्या जाने, दूर बैठा कोई ज़्यादा बारीकी से भला-बुरा देख पाये। बस यही सोच कर लिखने की जुर्रत की है।

यह तो हुई एक बात, दूसरी और खास बात, अगर 'बेदखल' हुए तो कैसे और क्यों होंगे? कब? का जबाब तो मिल ही चुका था। लाहुल घाटी के जाने-माने विद्वान, दार्शनिक, कवि, लेखक एवं सरकारी अफसरों में से कुछ से मुलाकात कर पाया कुछ हद तक काम व्यक्तिगत था। फिर भी सभी के नाम लिखने की इच्छा रख रहा था। पर वो एथिक्स वाला ख्याल आया, कि लिखते वक्त जो विचार उभरें उनकी ज़िम्मेवारी किसी पर न थोपी जाये, असली नाम लिखने से बचा जाये। वो भय था या उनके प्रति आदर भाव, पेन उठानी पड़ गयी। सच कह रहा हूँ ऐसे-ऐसे नाम हैं, एक साथ लिख डालता तो सफेद कागज़ चमक उठता!

बार-बार लाहुल की बात छेड़ता, फिर जान बूझ कर प्रोजेक्ट की चर्चा ले आता। साफ दिख पड़ रहा था, एक चिंता थी सबकी आवाज़ में। यह ज़रूरी भी है। "कुछ हैं जो ग्राउंड लेवल में लगे हैं, कुछ ऐसे भी जो प्रसिद्धि का लालच लिए डटे रहने का ढोंग भी रचा रहें हैं"। यह कहते हुए तोद् घाटी के भविष्य का सवाल उभरा। प्रोजेक्ट का काम या तो राईट बैंक में होगा या लेफ्ट बैंक में। दोनों ही तरफ से घाटी के पानी के स्रोतों पर कड़ा प्रैशर पड़ेगा। पीने का पानी नहीं रहा तो क्या आदमी, क्या जानवर। नई जगह बसना ही पड़ेगा। गाँव के गाँव तबाह होते दिख रहे हैं। समस्या सबके सामने है, किन्नौर, चंबा, सैंज के ज़ख्म अभी भरे नहीं। तब तो उनके दर्द को नज़रअंदाज़ सा किया कि 'हमारा तो कुछ नहीं जा रहा'। अब, लाहुल की बारी है।

सुरंग का उद्घाटन और प्रोजेक्ट वाली घटना को जितना मर्ज़ी संयोग कहा जाये, शायद होगा भी। फिर भी मन नहीं मानता। 30,000 की जनसंख्या लाहुल स्पीति की। उसमें से स्पीति की आबादी हटा के, कुल्लू-मनाली में बसे लोगों को अलग करके भी ज़्यादा से ज़्यादा 15,000 वोटर ही होंगे लाहुल भर में। 15,000 के वोट बैंक के लिए कोई भी सरकार 1700 करोड़ की सुरंग नहीं बनाती। और वो भी इंडक्शन चूल्हा और सिलेंडर के मुद्दे को लेकर झगड़ने वाली सरकार। 'राष्ट्र-हित' की अगर बात होती, चाइना या पाक का डर होता, तो आर्मी वाले कब की बना लेते सुरंग।

अरे भई! आगे भी तो कितने पास हैं। तगलङ्ला, बारालाचा ला, फलाँ-फलाँ ला, और फिर सिस्सू से आगे की सड़क भी तो साफ रखनी पड़ेगी। बाँध बनने में, बड़ी-बड़ी मशीनें लगती हैं। जो लम्बे ट्रकों में लादी जाती हैं। राणी-नाला और रोहतांग का श्यापा खत्म किया है। बस और कुछ नहीं है। दुनिया भर का पैसा बचेगा, टाईम बचेगा प्रोजेक्ट वालों का। आजकल टाईम की ही कीमत है भाई जी। पूछो प्रोजेक्ट वालों से। जुर्माना का फैसला जब आता है, तब तक तो जंगल काट-कूट के करोड़ों कमा लेते हैं ये लोग। फिर उस मुनाफे के सामने वो जुर्माना कुछ नहीं होता। इनका मकसद है कि काम नहीं रुकना चाहिए एक दिन भी, चाहे बाद में जुर्माना ही क्यों न देना पड़े। हमको तो अपना आलू-मटर, फूल-सब्जी दिख रहा है टनल से जाता हुआ। बिजली की तारें भी तो टनल के नीचे से ही जानी है। ट्रांसपोर्ट ट्रांसमिशन का कितना खर्चा बचा? पता भी नहीं चलेगा हमको तो।

एक कवि ने सुरंग के सन्दर्भ में कहा है कि 'गंदी हवा और मच्छर घुस आयेंगे इस छेद से'। 'कार्पोरेट फार्मिंग' तो सुना ही होगा। जो नहीं जानते, कार्पोरेट फार्मिंग का एक उदाहरण है प्लास्टिक के

पोलिहाऊस जिनमें न जाने क्या-क्या उगाया जाता है। मुनाफा भी तगड़ा ही होगा, तभी कोई इतना दूर दिल्ली से आ के, सेब नहीं लगा के, इतना कष्ट करके प्लास्टिक के घरों में निवेश कर रहा है। ज़मीन किसकी? कुल्लू वालों की। पूरा कुल्लू ज़िला धीरे-धीरे ज़मीन लीज़ में दे रहा है या बेच रहा है, दिल्ली वालों को, हैदराबाद वालों को। और सुरंग बनने के बाद लाहुल भी तो आएंगे ना ये लोग। २-३ मोटे सामी तो पक्का जुगाड़ लगा के लाहुल में घुस ही आयेंगे को-ऑपरेटिव के खस्ता हालत भी देख ही लिये हैं पिछले कुछ सालों में... आलू का को-ऑपरेटिव, होप्स का को-ऑपरेटिव, फेल है भई! होप्स तो पट्टन वालों ने उतार भी दिया। स्पर्धा का ज़माना है भाई। अब कल को तो नज़दीक में पेट्रोल पम्प खुलेगा तो तांदी थोड़ी न जाना पेट्रोल भराने। पुराना बोल के अपना नुकसान थोड़ी कराना। दिल्ली वाला कॉम्पटिशन में आएगा तो आज़ाद मंडी में तो उसकी चलेगी न। लाहुली पुराना ग्राहक है बोल के थोड़ी चलेगी। फिर अपना मुनाफा तो कम होना ही है। या तो पूरा गाँव इकट्ठा हो जाओ। वो फिर तुमने होना नहीं।

दिल्ली वाला फिर और खेत खरीदेगा, महीने का तगड़ा किराया देगा, साल का सोचो कितना बन जाएगा? फिर लोग बोलते हैं "किसने करना काम, आराम से बैठ के किराया खाओ"। तब बिज़नेसमैन चालाकी करेगा। मोटा पैसा देगा, ज़मीन खरीद लेगा। अभी तो लगता है न, नहीं बेचना, ज़मीन पुश्तेनी है, पंचायत ने मना किया। भई जब मोटा पैसा सामने होगा ना, कुछ नहीं दिखता फिर। गया। गई न अपनी ज़मीन। एक टब्बर बेदखल आराम से। वो सोचेगा पैसे का मनाली-अलेऊ में ज़मीन लूँगा। जीप डालूँगा किसी प्रोजेक्ट में। कुछ नहीं बनेगा। सब खत्म खा-पी के। प्लाट बन-बन के बिक जायेगा पंचायत का फैसला।

एक तो ये ना और दूसरी बात बचा हुआ कसर प्रोजेक्ट से पूरा हो जाना।

पहले तो रोज़गार का लालच, नौकरी सोच के लड़कों ने स्कूल छोड़ देना। छोटा मोटा ड्राईवर, हेल्पर लग जाना ट्रक-जीप में। जब तक प्रोजेक्ट तब तक ओ.के. होता है। प्रोजेक्ट खत्म, नौकरी भी गई और पढ़ाई भी अधूरी। भविष्य खराब हो जाता है बच्चों का। फिर छुट्टी और क्या?

ज़मीन का मुआवज़ा? एकदम से मिलने वाला कबल्ला पैसा। कितने हिमाचली उड़े इस पैसे की हवा में। मनाली, सैंज, किन्नौर में यही हाल हुआ। लम्बी गाड़ियाँ, फालतू के नये खर्चे, नये शौक, नशे की लत, आलस और आरामपरस्ती। ये सब ही माने हुए बुरे प्रभाव हैं मुआवज़े के। बाकी जिसको नहीं मिलता वो तो बर्बाद होता ही है।

ब्लास्टिंग-टनलिंग से पानी के चश्में सूख जाने का डर बना रहता है। अगर ये सूख गये तो कहाँ से होगी सिंचाई, जहाँ सिंचाई नहीं, पीने का पानी नहीं, वहां क्या कृषि क्या जीवन? और जहाँ कहीं सिंचाई मुमकिन हो, क्या गारण्टी है कि वहां ज़मीन होगी खेती के लिए? जब खेत नहीं तो क्या खेती? 'एक किसान एक लेबर बन के रह जाएगा'।

पानी-ज़मीन की बात तो चलो दिखती सी है। कुछ चीज़े हैं जो दिखती नहीं। जैसे कि कल्चर लोस, संस्कृति को आने वाला नुक्सान। रहन-सहन, पहनावा, खान-पान, धर्म-आस्था, मेहनत-मज़दूरी, जीने का तरीका, आपसी मेलजोल और हितकारी सोच ही संस्कृति के धागे में पिरोते हैं।

फिर जब हज़ारों की संख्या में बाहर से लेबर, अफसर, इंजीनियर आयेंगे तो हमारी सोच में भी बदलाव आएगा। 15,000 वाला लाहुलवासी तो माईनोरिटी सा बन के रह जायेगा।

बच्चे, बूढ़े और औरतें, सबसे कमज़ोर कड़ी होती हैं किसी भी समाज की। बाहरी सोच का सबसे ज़्यादा दुष्प्रभाव इन्हीं पर पड़ता है किन्नौर और सैंज में कितनी महिलाएं मानसिक संतुलन खो बैठी हैं। कितने बलात्कार, चोरी, डकैती और न जाने कितने घिनौने अपराध हुए जो शायद मीडिया ने नहीं उछाले। समाज और गाँव की संस्कृति पर सीधा वार है ये घटनाएं।

पार्वती घाटी को ही ले लीजिए। वहां तो टूरिज़म ने ही कितना गंद मचाया है। हर कोई, जो पहले किसान था, अब दुकानदार या बिज़नेसमैन बना हुआ है।

न जाने कब तक टिका रहेगा यह विकास का पुतला? एक ही गाँव में अमीर-गरीब उभर के आये हैं। कोई दूर ढालपुर जाता है अंग्रेज़ी पीने, कोई आज भी गाँव के चाय वाली दुकान में नशे की हालत में मिलता है। सरकार और नेता लोगों के गुण गाते हैं दोनों ही। बेवकूफ हैं सारे! और एक बात। पहाड़ों में दो ही बातें होती है, 'एक बात' और 'दूसरी बात'। चर्चा चाहे कितनी भी हो 'दूसरी बात' से आगे नहीं गिनी जाती! ऐसा नहीं कि लोगों को गिनती नहीं आती। बस! स्टाईल है अपना पहाड़ी लोगों का!

और दूसरी बात, यह कोई खास शोध या सत्य बिलकुल नहीं है। बस अनुमान है,मोटा-मोटा सा तुक्का कह लीजिये। ऐसा होगा ही होगा की संभावना नहीं दे सकता, पर ऐसा नहीं हो सकता की संभावना भी ज़्यादा नहीं है। इसलिए भाइयो क्या करना है, क्या नहीं करना है। आप सबको ही देखना है। बस इतना अनुरोध है सोच-समझ से फैसला लें।

शोधार्थी, एन्थ्रोपोलॉजी (मानव विज्ञान) विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

शीत मरुस्थल में कुछ दिन

डॉ. सूरत राम ठाकुर

गतांक से आगे....

स्पीति में तिब्बत के शासकों का इतिहास दसवीं शताब्दी के बाद मिलता है। तिब्बत के शासक किद दे ञिमा गोन के शासनकाल में स्पीति लद्दाख के साथ मिलाया गया था। ञिमा गोन ने राज्य को तीन बेटों में बांटा था। बड़े पल गी गोन को लद्दाख, दूसरे टशिगोन को गुगे तथा पुरङ और तीसरे देचुगगोन को ज़ंस्कर गो सुम तथा पिति-पिल्कोग। देचुगगोन ने ही किब्बर तथा रंगरीक गांवों को व्यापार का केंद्र बनाया। राजा लद्दाख में ही रहता था इसलिए शासन चलाने के लिए खरपोन की हैसियत से अधिकारी स्पीति में भेजे जाते थे।

मूरक्रॉफ्ट के सहयात्री जार्ज ट्रेबेक ने सन् 1821 ई. में जब स्पीति का दौरा किया था तो उस समय भी यह प्रथा पूर्ववत लागू थी। वैसे तो खरपोन गर्मियों में यहाँ आकर कर इत्यादि वसूलने के बाद सर्दियों में बर्फ पड़ने से पूर्व ही वापिस लद्दाख लौट जाते थे। परन्तु कई बार बर्फ जल्दी पड़ने के कारण उन्हें यहीं पर अपनी सर्दियां बितानी पड़ती थी। यदि गर्मियों में लोगों के प्रति उनका व्यवहार ठीक नहीं रहता था तो लोग उनकी हत्या कर देते थे और गर्मियों में गांव के नम्बरदार लद्दाख जाकर राजा को उनकी मौत की खबर यह कह कर सुनाते थे कि उन्हें किसी लाईलाज बीमारी ने जकड़ लिया था। यह भी माना जाता है कि उनकी हत्या के जघन्य पाप से बचने के लिए प्रायश्चित के रूप में लोग खरपोनों के नाम पर छोद्-तेन या छोर्तेन (स्तूप) निर्मित कर लेते थे। ये छोर्तेन विशिष्ट व्यक्तियों व लामाओं की मौत पर अभी भी बनाये जाते हैं।

बौद्ध लोगों की यह मान्यता है कि मनुष्य दोबारा अवतार लेता है इसलिए मरने वाले की याद में मृतक की हड्डियों तथा सोने-चांदी के आभूषणों को छोर्तेन के अन्दर रखने से उन्हें अगले जन्म में ये चीजें उपलब्ध होंगी। छोर्तेन के साथ ही "ओम मणि पद्मे हूँ" से लिखित झण्डे लहराये जाते हैं। घरों की छतों पर भी ये झंडियां लटकाई हुई होती हैं।

स्पीति के ग्यू गांव में सन् 1962 ई. में चीन के साथ युद्ध के समय भारतीय फौज द्वारा मोर्चा खोदने पर एक ममी निकली थी जो अब भी एक कमरे में सुरक्षित रखी गई है। छेरिङ दोर्जे ने बताया कि इस ममी को तैयार करने में करीब तीन से चार मास लगते हैं। इसे इस कला के माहिर विशेषज्ञ ही तैयार करते हैं। बौद्ध धर्मावलम्बियों में तिब्बत के लोगों द्वारा ममी बनाने की परम्परा रही है। तिब्बती बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण ग्यू में भी ममी बनाई गई है। पहले केवल राजा की ही ममी बनाकर रखी जाती थी। बाद में लामा की भी ममी बनाई जाने लगी। जब कोई लामा मर जाता है तो उसके खून वाले सभी अंगों को निकाल दिया जाता है और उसके बाद शव को सुखाया जाता है। अच्छी तरह से सूख जाने के बाद फिर इसे रेत व नमक के साथ एक माह तक सुखाया जाता है। ममी से बदबू न आये इसके लिए खुशबू वाला तेल इस्तेमाल होता है। इसके बाद ममी के नकली आंख लगाई जाती है। ममी के अन्दर हवा न जाने देने के लिए इसे पूरी तरह से स्लेट के साथ बन्द किया जाता है। ग्यू गांव में जिस ममी को रखा गया है वह लामा की है और करीब सात सौ साल पुरानी है। स्पीति घाटी के इतिहास के अवशेष

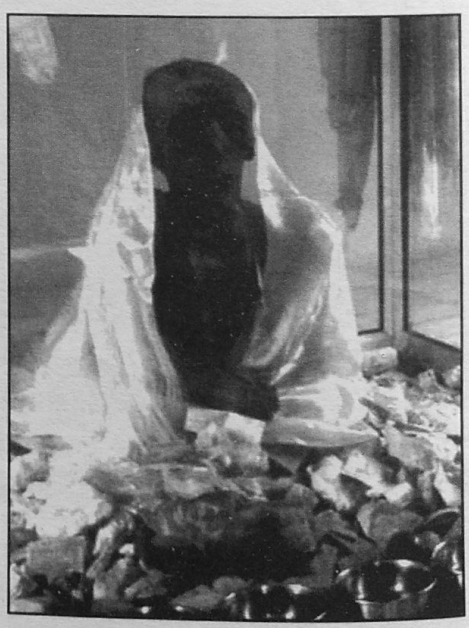

लङचा गांव में भी मिलते है। यह गांव काज़ा से साढ़े आठ किलोमीटर दूर है यह वाहन योग्य मार्ग से जुड़ा हुआ है। लङचा जीवाश्मों के लिए प्रसिद्ध है।

पश्चिमी यात्री गे-रार्ड ने सन् 1776 ई. में स्पीति की यात्रा की थी। उन्होंने लिखा है कि उस समय लद्दाख के शासकों के प्रमुख गढ़ डंखर के किले पर रामपुर के शासकों ने दो वर्ष तक कब्ज़ा कर रखा था। जार्ज ट्रेबेक ने सन् 1621 ई. तक स्पीति को किसी न किसी रूप में लद्दाख के ही अधीन माना है। इससे यह भी लगता है कि स्पीति के लोग गुप्त रूप से सम्भवतः कुल्लू, रामपुर और लद्दाख के राजाओं को नज़राना देते रहे होंगे।

स्पीति पर लद्दाखी सामंतों का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पांच सौ वर्ष तक शासन रहा। डोगरा सेनापति ज़ोरावर सिंह ने जब लद्दाख को अपने अधीन किया तो उसने स्पीति का शासन देखने के लिए सन् 1841 ई. में रहीम खान नामक एक सैनिक अधिकारी को नियुक्त किया था। रहीम खान ने अपने दामाद गुलाब खान को स्पीति का अधिकारी नियुक्त किया। उसने स्पीति के बौद्ध विहारों में बहुत लूटपाट की थी।

सन् 1840 ई. में ही कुल्लू के साथ सिखों ने स्पीति पर भी आक्रमण किया था। सन् 1846 ई. को लाहौर संधि के अनुसार अंग्रेज़ों ने लाहुल-स्पीति सहित कुल्लू राज्य अपने अधिकार में ले लिया था। प्रशासन की दृष्टि से इन दोनों क्षेत्रों को कुल्लू सब डिविज़न के अन्तर्गत काँगड़ा ज़िला में मिला दिया गया। उसी साल सर्दियों में मिस्टर ए. कनिंघम और मिस्टर वान्स एगनिउ ने लद्दाख, स्पीति और तिब्बत के बीच सीमा भी निर्धारित की थी।

स्पीति राजघराने के लोगों को आज भी नोनो कहा जाता है। स्पीति समाज में नोनो कुलीनता का परिचायक है। इनके पूर्वज लद्दाख के उन सेनानिवृत्त खरपोन या मंत्रियों के वंशज हैं जो स्थायी रूप से स्पीति में रह गये थे। क्युलिङ का नोनो अंग्रेज़ी शासन काल में भी सरकारी कामकाज संभालता था। गगा तनज़िन नमग्यल स्पीति में चर्चित खरपोन रहे हैं। इन्हें लोकगीतों में भी स्थान मिला है। ये डंखर के किले में निवास करते थे। सन् 1873 ई. में स्पीति को विशेष दर्जा मिलने पर प्रशासन का अधिकार डंखर के खरपोन को मिला। इसमें राजस्व एकत्र करने के साथ-साथ छोटे-मोटे फौजदारी मुकद्दमों का निपटारा करना भी शामिल था। सन् 1878 ई. में उनके पुत्र नोनो दोर्जे छेतन को यह अधिकार मिला। सन् 1890 ई. में नज़र की कमज़ोरी की वजह से उन्होंने यह पद छोड़ा। तब उनके स्थान पर उनके नाबालिग पुत्र छे-डुब-नम-ग्यल को खरपोन नियुक्त किया गया। परन्तु कामकाज गगा टशी-रिन-छेन-टखा निपटाता रहा। सन् 1898 ई. में बालिग होने पर छे-डुब-नम-ग्यल ने काम संभाला, परन्तु सन् 1900 ई. में उनकी अचानक मौत हो गई। इस पर उसके अवयस्क बेटे मेढ तोबदन को उत्तराधिकार मिला। कामकाज उसके चाचा दोर्जे नमग्यल को करना पड़ा। सन् 1906 ई. में वह भी मौत का ग्रास बना। तब उसके पांच वर्ष के बालक गोनपो नमग्यल को नोनो के पद पर बिठाया गया। प्रशासनिक काम उसके चाचा जम-प-ग्य-छो ने संभाला। इसको स्पीति के स-क्य-पा निकाय के प्रसिद्ध तङ-ग्युद् गोम्पा को जीर्णोद्धार करके नये रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी दिया जाता है। इसलिए इस परिवार को क्युलिङ के नोनो परिवार स-क्य-पा के अनुयायी माना जाता है। इनके बाद नोनो छे-वङ-तोब-ग्यस ने पदभार संभाला।

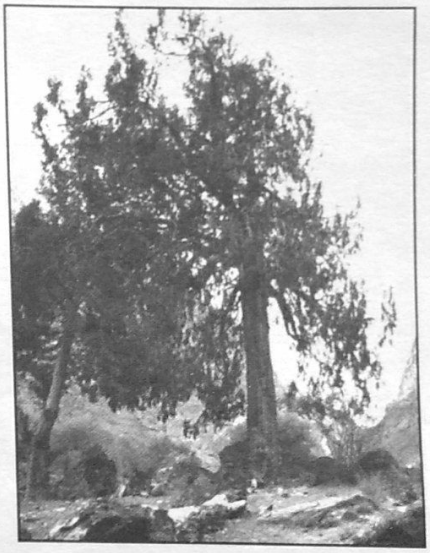
Juniper शुग्पा

छेरिङ दोर्जे के शोधपत्र पर विद्वानों में सार्थक चर्चा हुई। इसके बाद डॉ. रणधीर मनेपा जो लाहौल के केलंग में तिब्बती औषधि विद्या के वैद्य हैं। उन्होंने स्पीति में उगने वाले पौधों तथा जड़ी-बूटियों के बारे में बताया। उन्होंने कहा कि स्पीति में नमी वाले स्थानों तथा खेतों की मेंढ़ो में पौष्टिक घास उगती है। इसके अतिरिक्त Large willow जिसे ग्यलचङ भी कहते है, Birch अर्थात तगपा, Furze अर्थात डमा, Juniper अर्थात शुग्पा, Wild pea अर्थात तिरी, Thistle अर्थात तुल्से, Lucerne अर्थात बुगसन और सफेदा आदि पौधे पाए जाते हैं। माने से नीचे कहीं-कहीं भुर्ज के वृक्ष भी पाये जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व से काज़ा से आगे लरी गांव से सुमदो तक सेब के पेड़ भी लोगों द्वारा लगाये गये हैं।

इस क्षेत्र में पतीश, रत्नजोत, गूगल, पाषाण भेद, काला ज़ीरा, पंजा, वनककड़ी, सोमलता तथा छेरमा आदि जड़ी-बूटियों के अनन्त भण्डार हैं। इसमें सालम पंजा की जड़ें बड़ी शक्तिवधि क होती हैं, स्वाद में मीठी मधुमेह के उपचार में प्रयोग होती है। इसकी जड़ों से नपुंसकता के इलाज की दवा भी बनती है। काला ज़ीरा का सुगंधित तेल रासायनिक तत्व है। इसके बीजों को मसाले के रूप में प्रयोग करके वात रोग का निवारण होता है। छेरमा में विटामिन सी मुख्य रासायनिक तत्व है। यह फेफड़ों की बीमारियों के लिए लाभदायक है। आजकल वैज्ञानिक इसके गुणों पर खोज करने में जुटे हुए हैं। शिलाजीत ऊंची चोटियों में पाया जाता है। यह खून बढ़ाने तथा साफ करने में लाभदायक होता है। पाषाण भेद पित्त व गुर्दे की पत्थरी को तोड़कर बाहर निकालता है।

काज़ा के नायब तहसीलदार संजीव कुमार ने स्पीति के

रीति-रिवाज़ों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि स्पीति में सबसे बड़ा पुत्र पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। विवाह के बाद जब वह घर का मालिक बन जाता है तब उसे खङछेनपा कहा जाता है। उसके बूढ़े माँ-बाप छोटे घर में रहने लगते हैं। उस स्थिति में उन्हें खङचुङपा कहा जाता है। जबकि छोटे बेटे मठ में चले जाते हैं। यदि बड़े भाई की बिना औलाद के ही मृत्यु हो जाती है तो छोटा बेटा लामा पद छोड़कर उसका स्थान लेता है और सम्पत्ति संभालता है। वह बड़े भाई की पत्नी को भी अपनाता है। स्पीति में बहुत सी लड़कियां कुंवारी रह जाती हैं क्योंकि छोटा बेटा लामा बनकर विवाह नहीं करता। बहु पत्नी प्रथा यहां प्रचलन में नहीं है। कुंवारी लड़कियां प्रायः अपने बड़े भाई के साथ रहती हैं। यदि वे भाई के साथ न रहना चाहें तो बड़ा बेटा जीवन भर उन्हें गुज़ारे के लिए एक कमरा तथा एक खेत देता है। यहां केवल बड़ा भाई विवाह करता है। विवाह प्रायः धूमधाम से होता है इसी तरह विवाह विच्छेद पति-पत्नी की इच्छा से नोनो के सामने होता है। इस समय दोनों के सम्बन्धी भी उपस्थित रहते हैं। विवाह विच्छेद की क्रिया को कुद्रपा छुदचे कहा जाता है। इस समय पति-पत्नी एक धागे को अलग-अलग सिरे से पकड़ते हुए कहते हैं-"हमारी किस्मत में साथ रहना नहीं लिखा था इसलिए हम सहमति से अलग हो रहे हैं।" यह कहकर धागे को बीच से जलाया या काटा जाता है। तलाक के बाद जो गहने औरत के विवाह के समय मायके से लाये हुए होते हैं वह भी वापिस लौटाने पड़ते हैं। यदि पति-पत्नी में आपस में नहीं बनती और वे बिना तलाक के अलग रहना चाहते हैं तो उस स्थिति में पति को उसे छेती के तौर पर धन देना पड़ता है। यदि पत्नी की गलती हो तो उसे सारा दहेज वहीं रखना पड़ता है। यदि वह बिना तलाक लिए ही दूसरे से विवाह करती है तो दूसरे पति को उसकी एवज़ में दण्ड स्वरूप कुछ रुपये पहले पति को देने पड़ते हैं।

इनके अतिरिक्त तीन दिन तक चले सेमिनार में मेरे सहित सतीश कुमार लोप्पा, अजेय, खूब राम खुशदिल, हीरालाल ठाकुर और उरज्ञान ने भी अपने-अपने पत्र प्रस्तुत किए। इन तीन दिनों में कीह् गोम्पा में बैठकर स्पीति के बारे में बहुत कुछ सुनने समझने को मिला। तीसरे दिन सेमिनार के बाद सबकी राय बनी कि क्यों न अगले दिन स्पीति के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व रमणीय स्थानों का अवलोकन किया जाये। फिर न जाने कब इस ठन्डे भूभाग में आने का मौका मिले।

अगली सुबह सात बजे ही चाय नाश्ता किया और जीप ल्हलुङ के रास्ते चल पड़ी। पिन वैली के दूसरी तरफ लिंगटी से उत्तर की तरफ 14 किलोमीटर की दूरी पर ल्हलुङ गांव है।

जब हम ल्हलुङ पहुंचे तो गोम्पा बन्द पड़ा था। गांव के एक व्यक्ति से पता किया तो वह लामा को बुलाने गया। थोड़ी देर में उसके साथ एक पुराने मकान से एक वृद्ध लामा बाहर निकले। हमें देखकर वह बहुत प्रसन्न दिख रहे थे। हमने जुले किया और उनसे गोम्पा देखने की इच्छा जताई। ल्हलुङ में 75 वर्षीय यही लामा दोर्जे गोम्पा की देखभाल करते हैं। उन्होंने बताया कि यहां तक पर्यटक बहुत कम पहुंचते हैं। अधिकतर ल्हलुङ गोम्पा के अध्ययन के लिए शोधार्थी ही आते हैं।

लामा दोर्जे ने गोम्पा का द्वार खोला और उनके पीछे-पीछे हम भी गोम्पा के अन्दर घुस गये। 1008 वर्ष पुराने इस सरखङ गोम्पा में एक दूसरी से पीठ सटाये हुए बुद्ध की पुरातन मूर्ति स्थापित है। गोम्पा के एक कक्ष में विभिन्न अवतारों की पुरानी मूर्तियां दीवारों में टंगी हुई हैं। इनमें सोने का पानी चढ़ाया हुआ है। कहा जाता है कि लद्दाख के राजा के समय ग-दन-छे-वङ की एक सैनिक टुकड़ी लाहुल और स्पीति भी पहुंच गई थी। इस टुकड़ी ने स्पीति में तंग्युद और ल्हलुङ के बौद्धविहारों को जला दिया था। फलतः ल्हलुङ में अब केवल एक ही विहार बचा है। कहते हैं कि आरम्भ में यहां पर भिक्षु संघाराम सहित नौ बौद्ध मन्दिर थे। जो रत्नभद्र ने ग्याहरवीं शताब्दी में बनवाये थे। सन् 1924 ई. शटलवर्थ ने ल्हलुङ का अध्ययन करने के बाद माना कि यह मन्दिर ग्याहरवीं शताब्दी में निर्मित हुआ है। यहां पर लद्दाख के राजा सिंगे नम-ग्यल का 1590-1635 के समय का अभिलेख उपलब्ध हुआ है।

हमने लामा से फोटो खींचने की अनुमति मांगी तो उन्होंने बताया कि कैमरे की रोशनी से मूर्तियों का वास्तविक रंग फीका पड़ जाता है इसलिए आप फोटो नहीं खींच सकते। हमारे साथी छेरिङ दोर्जे तथा तोबदन को भोटी भाषा आती थी। वे लामा से भोटी में बोले तो लामा ने एक दो फोटो खींचने की अनुमति दे दी। गोम्पा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। लामा ने अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहा कि सरकार दूसरे गोम्पाओं पर तो ध्यान दे रही है परन्तु ल्हलुङ की तरफ किसी का ध्यान नहीं है। हमारे साथ लामा थोड़ी देर में ही घुलमिल गए। गोम्पा से बाहर आने पर उन्होंने हमें नमकीन चाय पीने का न्यौता दिया। उनके आग्रह को हम टाल नहीं सके। वह हमें अपने कमरे में ले गये जो सादगी पूर्ण तरीके से साफ सुथरा रखा गया था। ल्हलुङ गांव स्पीति घाटी का सबसे हरा-भरा गांव है। गांव के पार्श्व में लिंगटी खड्ड के किनारे पर हरे-भरे शुक्पा के पेड़ों का छोटा सा जंगल मनोरम दिखता था। नमकीन चाय का स्वाद अच्छा लगता है। चाय पीने के बाद लामा हमें गाड़ी तक छोड़ने आये।

ल्हलुङ से छोटे कच्चे मार्ग से होते हुए 10 किलोमीटर की दूरी पर स्पीति की पुरानी राजधानी डंखर गांव है। यह कभी स्पीति घाटी का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण गांव हुआ करता था। समुद्र तल से 3870 मीटर की ऊँचाई पर स्थित डंखर कभी स्पीति के शासकों की राजधानी हुआ करता था। स्पीति के शासक जिन्हें नोनो कहा जाता है, यहीं से राजकाज चलाया करते थे।

डंखर का बौद्धविहार एक टीले पर स्थित है। दूर से डंखर गोम्पा डब्बेनुमा खड़ी ढलान पर हवा में लटका नज़र आता है। टीले में सबसे ऊपर नोनो का भवन है उसके नीचे कुछ घर हैं। घर के साथ ही गोम्पा बनाया गया है। गोम्पा में अभी भी रत्नभद्र के समय का लोचावा ल्ह-खङ के नाम से मन्दिर है जिसकी दीवारों पर प्राचीन भीत्तिचित्र बने हैं। पुराना गोम्पा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है जिसके जीर्णोद्धार का काम चला हुआ है। गांव के एक किनारे पर नया गोम्पा भी बनाया गया है। पूजा अराधना इसी भवन में होती है। सन् 1849-50 ई. में असिस्टेंट कमिश्नर मेजर हे ने पूरी सर्दी डंखर के किले में बिताई थी। कहते हैं कि इस किले को जेल के तौर पर भी प्रयोग किया जाता था। इसमें एक ऐसा कमरा था जिसमें न तो कोई दरवाज़ा और न ही कोई खिड़की थी। बस छत की ओर एक छेद हुआ करता था। जहां से कैदियों को सज़ा देने के लिए नीचे फैंका जाता था। उस अंधेरी कोठरी में कुछ दिन रहने के बाद कैदी अपने आप तड़प-तड़प के मर जाता था। जब कभी स्पीति घाटी पर बाहरी हमला होता था तो डंखर के किले में आग जलाकर धुआं किया जाता था। जिसे देखकर लोग ऊंचे स्थानों को चले जाते थे। डोगरा आक्रमण के समय डोगरा फौजों ने इस किले को तहस-नहस कर लूट लिया था।

डंखर से ऊपर दो किलोमीटर की दूरी पर एक छोटी सी झील है जिसका जल शिचलिङ में निकलता है। इससे बड़ी झील मनेरङ जोत के पार्श्व में भी है। काज़ा से 13 किलोमीटर दूर काज़ा सुमदो मार्ग पर शिचलिङ से भी एक मार्ग डंखर को जाता है। शिचलिङ से 7 किलोमीटर उत्तर की तरफ डंखर स्थित है। डंखर के किले से बाहर निकलने पर मैंने छेरिङ दोर्जे से डंखर सहित सभी मठों में मेले उत्सवों के बारे में जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि स्पीति घाटी के डंखर में अगस्त-सितम्बर में नमगन छेन्मो नाम का मेला लगता है। जिसमें घोड़ों की दौड़ मुख्य आकर्षण होती है। नवम्बर में यहां पर ताल्सी छेन्मो का त्यौहार होता है। कीह, ताबो, डंखर और पिन के मठों में नवम्बर में ही ग्युतोर त्यौहार मनाया जाता है। जिसमें सुख-समृद्धि तथा बीमारियों से बचाव के लिए छम नृत्य किया जाता है। जबकि थाग्युङ गोम्पा में इसके एक मास पूर्व जिगजेद उत्सव मनाया जाता है। फसल कटाई के कुछ दिन पूर्व घाटी के सभी गांवों में चुन्गुन का त्यौहार विभिन्न नामों से मनाया जाता है जिसमें डंखर में छोतर, माने में चोबरङ, किब्बर में डुङ्वचन, लोसर में एङ्ग्वो ग्याजिन, सगनम में गाम्बाला प्रमुख हैं। सन् 1952 ई. तक लादरचा में ही जुलाई-अगस्त मास में दो मास तक प्रसिद्ध व्यापारिक मेला लगता था। जिसमें लाखों रुपयों का व्यापार होता था। काज़ा में मुख्यालय बनने के बाद अब यह मेला अगस्त मास में काज़ा में ही मनाया जाने लगा है। इसे राज्य स्तरीय मेले का दर्जा प्राप्त है। स्पीति चिरकाल से उन्नत नसल के घोड़ों के लिए प्रसिद्ध रहा है। आज भी यहां के चमुर्थी घोड़े उत्कृष्ट माने जाते हैं। यही कारण है कि आज भी लादरचा मेले में अश्वों की दौड़ की प्रतियोगिता मेले का प्रमुख आकर्षण है। डंखर गांव में कुछ समय बिताने के बाद हम शिचलिङ होते हुए अतरगू पहुंचे और वहां से पिन घाटी की ओर निकल गये। अतरगू से एक मार्ग पिन वैली को जाता है। अतरगू के पुल से दो किलोमीटर की दूरी तय करने पर पिन घाटी शुरू होती है। पिन घाटी की पहाड़ियों में हिम चीता और साईबेरियन बकरे चरते हैं। पहाड़ी बकरे प्रायः जुलाई और अगस्त मास में जन्मते हैं।

घाटी का ज़्यादातर भाग संरक्षित क्षेत्र है जिसमें 675 वर्ग किलोमीटर पिन घाटी का राष्ट्रीय पार्क शामिल है। यह घाटी हरी-भरी संसाधनों से परिपूर्ण है। इसमें तांङ्ती, मूलिङ तथा क्यूरिङ गांव प्रमुख हैं।

डंखर किला

पिन घाटी का कुङरी मठ एक खुले स्थान पर स्थित है। जब हम कुङरी मठ पहुंचे तो वहां पर लामाओं द्वारा पूजा की जा रही थी। कङलिङ, ग्यलिङ, और ङा, एक प्रकार की डफ को बजाते हुए "ओम मणि पद्मे हूँ" का उच्चारण करते हुए लामागण वातावरण को भक्तिमय बनाये हुए थे। इस मठ का निर्माण सन् 1330 ई. में हुआ है। यहां सन् 2004 ई. में छोटा कालचक्र समारोह हुआ था। यहां से एक पैदल पगडंडी पिन पास से होते हुए कुल्लू ज़िला की पार्वती घाटी में पहुंचाती है। दूसरा मार्ग भावा पास होते हुए किन्नौर से मिलता है। इस घाटी में यत्र-तत्र टंगरोल भी चरते हुए दिखाई देते हैं।

स्पीति के पांच प्रमुख बौद्ध मठ तिब्बत के लामा वाद से प्रभावित हैं। कीह, डंखर व ताबो मठ ग्येलुग्पा संप्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। थाङ्युङ मठ भी ग्येलुग्पा से सम्बन्धित है। परन्तु साक्य सम्प्रदाय वालों ने इसे प्रतिस्थापित किया है। ये लाल टोपी तथा स्कार्फ पहनते हैं। पिन वैली का मठ ड्रुग्पा सम्प्रदाय का प्रतिधित्व करता है। असल में ये साधू नहीं बल्कि गृहस्थ हैं और हिन्दू ब्राह्मणों की तरह धार्मिक काम करते हैं।

पिन वैली में लामा को बुजेन कहा जाता है। कहने को तो ये परिव्राजक लामा माने जाते हैं परन्तु वास्तव में घुमक्कड़ कलाकार होते हैं जो गांव-गांव जाकर खेल-तमाशे और नाटक पेश करके जीवनयापन करते हैं। बुजेन कपड़े तो लामाओं जैसे पहनते हैं परन्तु सिर नहीं मुंडवाते। वे बालों को पीछे की ओर संवार कर गूंथकर रखते हैं। बौद्ध मंदिरों में बुगजल, मंजीरे के आकार का वाद्य पूजा तथा छम नृत्य के समय बजता है। एक दूसरा वाद्य ड्रिल्बु दोर्जे है। यह मंदिरों में प्रयुक्त घंटी सरीखा होता है। डमरू समान वाद्य को दरू और बड़े को दरझेन कहते हैं। कङलिङ वाद्ययंत्र का प्रयोग भी पूजा में होता है। यह शहनाई की तरह होता है। इसका निर्माण मृत महिला की जंघा की हड्डी से होता है।

बौद्ध लामाओं का सबसे महत्वपूर्ण यंत्र मणे या मणि-खोर-लो है। यह तांबे या चांदी का बना प्रार्थना चक्र है जिसके भीतरी भाग में "ओम मणि पद्मे हूँ" मंत्र उत्कीर्णित किया जाता है। इसके मध्य भाग में लकड़ी का डांड जिसके साथ एक घंटी जुड़ी होती है। साथ ही एक ज़ंज़ीर में धातु का एक टुकड़ा लगा होता है जो इसके संतुलन को बनाये रखता है। इसे डांड से पकड़कर हाथ में थामकर घड़ी की सूइयों की दिशा में 'ओम मणि पद्मे हूँ' मंत्र का उच्चारण करते हुए घुमाया जाता है।

यद्यपि स्पीति के अधिकांश परिवार बौद्ध बन गये हैं परन्तु कुछ परिवार अभी भी हिन्दू हैं। इनमें चार श्रेष्ठ जातियां मानी जाती है। जिन्हें नोनो कहा जाता है। उनकी पत्नियों को शेमा कहा जाता है। नोनो की लड़की को जोजो तथा उसका पति यदि नोनो परिवार से नहीं है, जो कहलाते हैं। बज़ीर को ग्यलपो कहते हैं। ये परिवार डंखर से नीचे क्युलिङ, लिङटी खड्ड के पास तथा ग्युङ्ल, पिन कोठी के कुलिङ में रहते हैं।

खेती करने वालों में लुहार अधिक हैं। इन्हें छाजङग कहते हैं। पिन वैली में लामाओं के उत्तराधिकारियों को छाजङगस कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ परिवार लुहार, तरखान, शिङ्जोपा और बाजगी के भी रहते हैं।

कुंगरी मठ में पूजा देखने के बाद हम स्पीति घाटी के प्रसिद्ध गोम्पा स्थल ताबो की ओर चल पड़े। ताबो से पहले पोह में हमारे एक साथी हीरालाल ठाकुर का ससुराल है। उनके साले ने दोपहर का भोजन उनके घर में करने का अनुरोध किया हुआ था। दोपहर के अढ़ाई बज चुके थे भूख भी लग रही थी। अतः कुङरी मठ में अधिक समय न गंवाते हुए सीधे उनके गांव पहुंचना चाहते थे। लगभग तीन बजे हम उनके गांव पहुंचे। वहां वे हमारा बेसब्री से इन्तज़ार कर रहे थे। हीरालाल ठाकुर ने हमारा परिचय परिवार वालों से करवाया। उनके ससुर, सास, साला, साले की पत्नी व उनका पुत्र कुल मिलाकर एक छोटा और सुखी परिवार लग रहा था। उनकी सास ने पारम्परिक वेशभूषा व आभूषण पहन रखे थे। उन्होंने गहनों में सिर पर चांदी की बेरक पहनी थी जिसमें कपड़े के ऊपर फिरोज़ा पिरोया हुआ था। इसका वज़न लगभग एक से डेढ़ किलो के आसपास था। उन्होंने बताया कि यह शादी विवाह में सिर पर पीछे की ओर पहना जाता है। इसी तरह एक अन्य आभूषण सिर पर पहना जाता है जिसे कोंता कहते हैं। यह सिर के दोनों ओर पहनते हैं। उन्होंने गले में गुत के नीचे पहने हुए गहने का नाम कंशू बताया। जिसमें लामाओं द्वारा अभिमंत्रित छिन्लप डाले जाते हैं जो अनिष्ट से बचाव करते हैं। गले में फिरोज़े की एक से सात लड़ियों की माला भी पहन रखी थी। गले में टुमटुम, उलतिक, डम्पा उलतिक, गउ उलतिक, गन्नगन, छोलोमा आदि मालाएं भी फिरोज़े या मूंगे में पिरोकर पहनी हुई थी। एक विशेष प्रकार का बना हुआ शंख दोनों हाथों में पहने हुए थे जिनका रंग सफेद था और वज़न लगभग 200 ग्राम। हाथ में ही 20 तोले का चांदी का कड़ा जिसका नाम उन्होंने दूं बताया, भी पहना हुआ था। कमर के नीचे घुटने तक 20-25 लड़ियों का चांदी का एक गहना जिसे दोंचा कहते है, भी पहन रखा था इसका वज़न आधा किलो से अधिक ही था। कमर में ओढ़ी शाल को बांधने के लिए 6-7 लड़ियों की चांदी की बनी हुई बुमणी का नाम उन्होंने दिगरा बताया। इसी तरह छाती की तरफ पिचुप भी पहना हुआ था। सभी गहने लगभग चांदी व फिरोज़े के ही थे। लगता है स्पीति में चांदी के गहने बनवाने का रिवाज़ है।

उनकी वेशभूषा भी आकर्षक थी। सिर पर एक प्रकार की टोपी पहनी हुई थी जिसका नाम उन्होंने गोट्टा बताया। सूती कपड़े की बनी कमीज़ और सूथन के ऊपर कलेजी रंग का एक प्रकार का ऊनी कपड़े का चोलू पहना था जिसके निचले भाग के किनारें

में चारों ओर के घेरे में गोनम थचके यानि कि सात रंगों के ब्लेज़र की बारीक पट्टियां सिली हुई थी जो चोलू को आकर्षक बनाये हुई थी। उनकी बहू ने टेरीकोट का बना गर्मियों में पहने जाने वाला चोलू पहना हुआ था। पूछने पर उन्होंने इसका नाम सुलमा बताया। सुलमा रेशमी और मलमल का भी बनता है। यह आगे से खुला होता है। ऊपर से नीचे के भाग में इसमें कई तहें दी जाती हैं। सास बहू दोनों ने लगभग 3 फुट वर्गाकार में एक शाल पीठ पर पहनी हुई थी। स्पीति में इसे लिङचा कहते हैं। इसे आगे की तरफ छाती के पास दिगरा से बांधा गया था। लिङचा में कई तरह के डिजाईन बनाये हुए थे। एक फूलदार लिङचे की कीमत लगभग 3000 रुपये से अधिक ही होती है। उन्होंने बताया कि लिङचे की तरह एक वस्त्र चिरतूल कहलाता है जिसे मेमनों की ऊन सहित खाल से बनाया जाता है। इसे सर्दियों में कभी-कभी बूढ़ी औरतों द्वारा ही पहना जाता है। पुराने ज़माने में चिरतुल लोक्पा भी खाल का बना हुआ पहना जाता था।

हीरालाल जी के ससुर ने कान में सोने के गङलोङ पहने हुए थे जिसमें फिरोज़े या मूंगे के नग लगे हुए थे। गले में उलतिक अर्थात सोने की कंठी व चांदी का चौकोर आकार का जकसंग पहना हुआ था। हाथ में अंगूठी जिसे सुरतुप कहते हैं, भी पहन रखी थी। सिर पर टोपी (छिरिंग), कमीज़, चोला, लकपा, लकपा को बांधने के लिए केरा या गुच्छी, एक मेमनों की खाल का चरलक तथा ऊनी व सूती पजामा पहन रखा था। उन्होंने बताया कि सर्दियों में पैरों में एक प्रकार का जूता पहनते हैं जिसे लम्स या वलजेन कहते हैं। वलजेन बर्फ के ऊपर चलने में प्रयुक्त होता है।

वेशभूषा और आभूषणों के बारे में चर्चा हो ही रही थी कि इतने में उन्होंने मीठी व नमकीन चाय के साथ अरा (लाहुली शराब) भी हमारी खिदमत में पेश कर दी। मैं, उरज्ञन, हीरालाल ठाकुर ने नमकीन चाय के साथ अरा का भी ज़ायका लिया। उसके बाद भोजन लग गया और हमने घी के साथ सत्तू का सेवन किया। सत्तू लाहुल स्पीति क्षेत्र का पारम्परिक खाद्य पदार्थ रहा है। उन्होंने सेब के कुछ पौधे भी लगा रखे हैं जिनमें सेब लगे हुए थे। उन्होंने दो-तीन सेब पेड़ से उतारकर लाये। सेब का आकार छोटा ही था। खाने में मीठे परन्तु कुल्लू के सेब से सख्त थे। भोजन करने के बाद हम ताबो की ओर चले। उन्होंने ताबो से वापसी में उनके घर में ठहरने का आग्रह किया परन्तु हमने अगले दिन वापिस कुल्लू लौटना था। अतः उनका आग्रह चाहते हुए भी स्वीकार नहीं कर सकते थे।

दोपहर के 4:00 बजे हम ताबो पहुंचे। डंखर से 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित घाटी का पुराना बौद्ध विहार ताबो गांव में स्थित पर्यटकों तथा शोधार्थियों के लिए उत्सुकता का केंद्र रहा है। बुद्ध धर्म के प्रमुख केंद्र ताबो का निर्माण सन् 996 ई. में दादा बोधिसत्व द्वारा हुआ था। यह गोम्पा पुरातत्व विभाग की देख रेख में सुरक्षित स्मारक घोषित हुआ है। ताबो की दूरी कुल्लू से 248 तथा शिमला से 365 किलोमीटर है। कुल्लू एवं शिमला दोनों स्थानों से ताबो वाहन योग्य मार्ग से जुड़ा हुआ है। समुद्र तल से 3050 मीटर की ऊँचाई पर स्थित ताबो गोम्पा में नौ कक्ष हैं जिनमें पांच पुराने हैं। ताबो बौद्ध विहार के मुख्य कक्ष के पूर्व के उपकक्ष में द्वारपालों की दो प्रतिमाएं हैं। मठ का मुख्य कक्ष 65 फुट लम्बा और 35 फुट चौड़ा है व कक्ष का मुख्य आकर्षण वैरोचन की सफेद गजकारी युक्त मूर्ति है जिसमें चार आकृतियां एक दूसरे के पीछे स्थित हैं। दीवारों पर लगभग सात फुट ऊँचाई पर 32 चित्र फलक हैं। इनमें से केवल एक सम्पूर्ण वक्ष युक्त महिला है। सिंहासन पर बुद्ध की एक प्रतिमा है। भित्तिचित्रों में जातक कथाओं तथा बुद्ध के विभिन्न रूपों में चित्र अंकित हैं। वैसे तो ताबो मठ के मकान साधारण मिट्टी के ही बने नज़र आते हैं। परन्तु जब अन्दर जाकर देखा तो ये वास्तु कला के अदभुत कारीगरी का सबूत पेश किये हुए लगे। अन्य प्रतिमाओं के साथ-साथ ताबो के पूर्व लामा की मूर्ति भी यहां के नये भवन में बनी हुई है।

ताबो को चोसखोर भी कहते हैं। अर्थात वह पवित्र जगह जो चारों ओर मठ से घिरा हुआ हो। एक नये भवन का निर्माण सन् 1981-83 ई. के मध्य हुआ है। इसकी ऊपरी मंज़िल में लामाओं के आवास के साथ एक बैठक है। इसके साथ ही दलाई लामा के ठहरने का विशेष कक्ष भी बना है। ताबो में सड़क के ऊपर कुछ

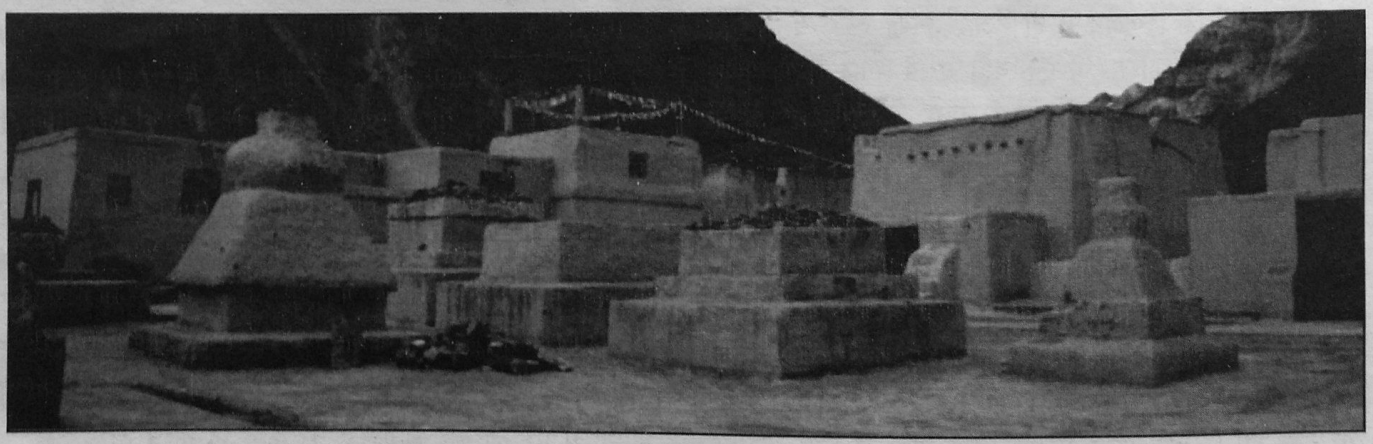

ताबो मठ

गुफाएं हैं। लगता है मठ के निर्माण से पूर्व इनमें लामा रहते होंगे। इन गुफाओं में से एक में कुछ भित्तिचित्र अभी भी देखे जा सकते हैं। ताबो के मुख्य मंदिर में अनेकों बौद्ध ग्रंथों की दुर्लभ पोथियां भी हैं।

यहां के इन नौ गोम्पाओं को यहां की बोली में डुफुग कहते हैं। यह डुफुग ध्यानयोग के लिए भिक्षु लामाओं के लिए प्रयोग में लाई जाती है। गारा मिट्टी से बने कमरों की दीवारों में भिन्न-भिन्न चित्र बने हैं। जो मैत्रेय, मंजुश्री, अवलोकितेश्वर, अमिताभ, वैरोचन, अतीशा दीपंकर आदि के बताये जाते हैं।

हमारा मार्गदर्शन लामा पद्मा दोर्जे ने किया जो यहां पिछले दस वर्षों से रह रहे हैं। उन्होंने बताया कि रिन-चेन-ज़ङपो अर्थात रत्नभद्र जिसे लो-त्स-वा या लोचावा कहा जाता है जिसका अर्थ अनुवादक है, ने करवाया है। रिन-चेन-ज़ङपो एक धर्म प्रचारक तथा अनुवादक के साथ-साथ कलाप्रेमी व वास्तुकला में भी रुचि रखता था। माना जाता है कि उसने 108 बौद्धविहार बनाये। उसने कश्मीर से 32 कश्मीरी बौद्ध कलाकार साथ लाये और उनकी सहायता से बौद्ध मठों का निर्माण करवाया। कानम, चिने, नाको, गैमुर, के बाद उन्होंने ताबो के मठ का निर्माण करवाया। The temples of western Tibet and their Artistic symbolism में इस मठ के बारे में उल्लेख मिलता है कि मठ का निर्माण दादा बोधिसत्व अर्थात ये-शेस-ओद् द्वारा हुआ। इसके 66 वर्ष बाद इनके पोते ल्ङ-सुम-पा द्वारा मंदिर पुनः बनवाया गया। ये-शेस-ओद् का कार्यकाल सन् 967 ई. से 1040 ई. के बीच माना जाता है।

ए. एच. फ्रेंके ने Antiquities of western Tibet में लेख की तिथि सन् 1050 ई. निश्चित करते हुए उस में से पुनर्निर्माण के 46 वर्ष घटा कर 1004 निर्माण काल माना है। जीर्णोद्धार के समय रिन-चेन-ज़ङपो की भेंट दीपंकर श्रीज्ञान से भी हुई थी जिसे अतिशा भी कहते थे। तिब्बती कैलेंडर के अनुसार फायर-एप वर्ष (अग्नि-वानर) में ताबो का निर्माण हुआ जो सन् 996 ई. ही है। रिन-चेन-ज़ङपो ने यहां एक ही रात में 108 मंदिर बनवाने का संकल्प लिया था। अभी 8 मंदिर ही बने थे कि भोर हो गई। अतः आगे का कार्य उन्हें स्थगित करना पड़ा। बाद में 108 मठों का निर्माण कार्य उनके दिग्दर्शन में ही हुआ। उनकी स्मृति में उन्हीं के नाम से ताबो मंदिर परिसर में एक बड़ी सराय बनाई गई है जिसमें सेमीनार कक्ष भी बने हुए हैं। इसके साथ ही नये गोम्पाओं का निर्माण भी हो चुका है।

जुलाई 1996 में ताबो बौद्ध विहार के एक हज़ार वर्ष पूरे होने पर सहस्राब्दी कालचक्र समारोह यहां बड़ी धूमधाम से मनाया गया। पद्मा दोर्जे ने बताया कि इस समारोह में विश्व के कोने-कोने से बौद्ध मतावलम्बी शिरकत करने आये थे। इसमें हिमाचल सरकार का सहयोग, स्थानीय जनता की भागीदारी तथा प्रबन्धक कमेटी की देख-रेख में 50 हज़ार से एक लाख लोगों के रहने खाने का इन्तज़ाम किया हुआ था। 15 दिन तक चले इस समारोह में 18 जून तक पूजा पाठ तथा अर्चना में लगे रहे। तदुपरांत धार्मिक कार्यक्रमों, प्रवचनों, सेमिनारों का सिलसिला निरन्तर चलता रहा। दिन के समय लोग दलाईलामा के प्रवचनों से अलौकिक आनन्द में मग्न रहे। शाम को देश के विभिन्न भागों से आये लोकनर्तक दलों के कार्यक्रमों से भारतीय संस्कृति के अलौकिक दर्शन करते रहे।

भगवान बुद्ध ने 80 वर्ष की आयु में परिनिर्वाण प्राप्ति से कुछ समय पूर्व धान्यकटक नामक स्थान पर चैत्र पूर्णिमा को प्रथमतः कालचक्र का उपदेश देकर महानिर्वाण का मार्ग बताया था। सन् 1996 ई. का कालचक्र महाभिषेक स्पीति घाटी के लिए तीर्थ संगम तथा इसकी ऐतिहासिकता के लिए हमेशा याद रखा जाएगा।

ताबो में भिक्षु लामाओं के लिए आध्यात्मिक शिक्षा का प्रबन्ध है। आजकल यहां 35 विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। छात्रों को शील, प्रज्ञा तथा धर्माचरण की शिक्षा दी जाती है। मैं ने लामा दोर्जे से लामाओं द्वारा गेरुआ वस्त्र धारण करने के बारे जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि भगवान बुद्ध ने 38 से 80 वर्ष तक जो उपदेश प्राणियों को दिए, वे ही बौद्धों की आध्यात्मिक विद्या है। बौद्ध परम्परा का पालन करते हुए लामा गेरुआ वस्त्र धारण करते हुए त्याग, तपस्या से परिपूर्ण करुणामय जीवन जीते हुए धर्मचक्र लिए रहते हैं।

लामा दोर्जे हमें उस कक्ष में भी ले गये जहां 35 भिक्षु शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। भिक्षु एक बड़े हाल में लामा गुरु से धार्मिक शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। बैठने के लिए सभी के लिए एक समान छोटे-छोटे कालीन बिछे हुए थे। गुरु का आसन थोड़ा ऊँचा था। उन्होंने बताया कि शिशु बौद्ध मठों में जाकर अहिंसा का धर्म, सत्यवचन, मद्यनिषेध की शपथ दिलाने के बाद ग्यछुल कहलाता है। 12-13 वर्ष का होने पर उसे गेलोङ कहा जाता है। गेलोङ का अर्थ होता है- धर्म पर चलने वाला। भोजन अधिकतर सत्तू के रूप में ही प्रयुक्त होता है। चाय नमकीन होती है जिसमें मक्खन का स्वाद बार-बार पीने को ललायित करता है।

"भिक्षुओं का खर्च कैसे चलता है?" मैंने उत्सुकता प्रकट करते हुए पूछा। इस पर उन्होंने बताया कि भिक्षुओं का खर्चा फसल के समय मांगी गई भिक्षा पर रहता है। फसल काटने के समय अनाज वसूलने के लिए हर मठ अपने कुछ भिक्षुओं को समूह में भेजता है। ये भिक्षु अपने-अपने परिवार में जाकर भिक्षा मांगते हैं। यद्यपि अधिकांश छोटे भाई लामा बनकर गोम्पा में आते हैं। लेकिन पैतृक सम्पत्ति में से कुछ खेत दाजिङ के रूप में भिक्षु क्षेत्र के नाम से अलग रखे जाते हैं। जिसकी उपज उन्हें मठ से आने पर भेंट की जाती है। यदि एक से अधिक छोटे भाई गोम्पाओं में जाते हैं तो उन्हें दाजिङ के अतिरिक्त और मदद भी मिलती है। इसके लिए ये गर्मियों में घर जा कर खेतीबाड़ी का काम भी करते हैं।

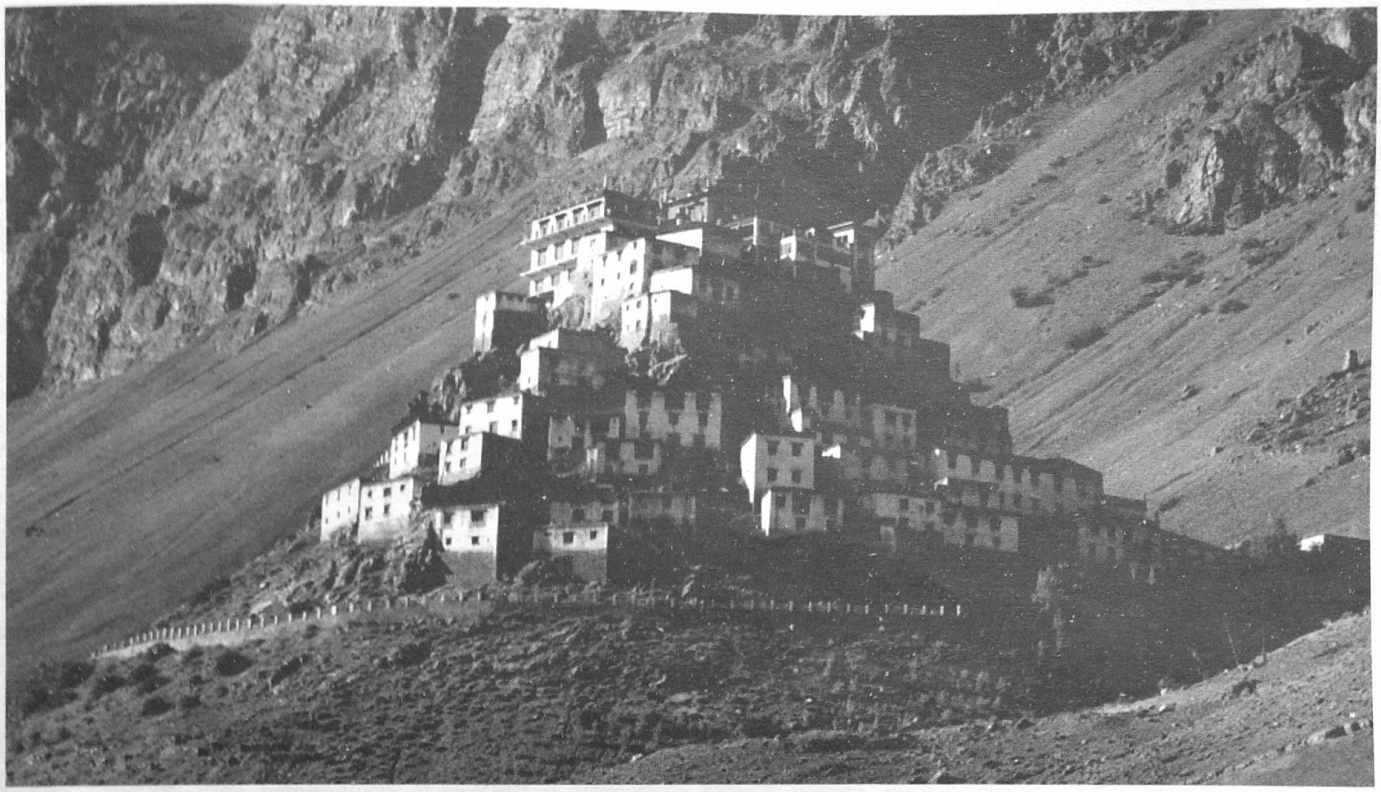

कीह गोम्पा

मठों का लघु रूप छोद्-खङ अर्थात पूजा गृह प्रत्येक परिवारों के घरों में भी मिलता है। स्पीति में महायान शाखा ही प्रचलित है जिसका आगमन नवीं-दसवीं ई. में हुआ। कुछ लोगों के अनुसार स्पीति के नौ बौद्ध मठ रत्नभद्र ने बनवाये। ये बौद्धमठ हैं- डंखर, ल्हलुङ, ताबो, चिचिम, किब्बर, रङरिग, लोसर, टशिगङ, यि-खिम, ग्युं-डुल, कीह, निचला माणी, क्युलिङ, ख्युरिङ और अल। रिन-चेन-ज़ङपो के विभिन्न जीवन चरितों में से एक उनके द्वारा निर्मित मंदिरों की सूची में पिति डंखर, लरी ल-री और ता-फो ताबो के लिए प्रयुक्त हुआ लगता है।

ताबो के दर्शन करने के बाद हम लगभग 6:00 बजे कीह् की तरफ लौट गये। काज़ा में हम ने फिर से एस. टी. डी. में अपने-अपने घरों को टेलीफोन करने चाहे परन्तु नेटवर्क काम नहीं कर रहा था। इसलिए काज़ा में ज़्यादा न रुकते हुए हम सीधे कीह लौट आये। पूरा दिन बहुत थक चुके थे इसलिए रात्रि भोजन के पश्चात जल्दी ही सो गये।

इन चार पांच-दिनों में कीह गोम्पा के लामाओं ने हमें भरपूर सहयोग दिया। हमारी हर सुविधा का खयाल रखा। अगली सुबह पौ फटते ही हम तैयार हो गये। अपना सामान बांधकर ठीक 7:00 बजे तक जीप के पास पहुँच गये। उस समय रिन्पोछे टुल्कु व दो तीन लामा भी हमें विदा देने के लिए उपस्थित थे। उनसे भाव भीनी विदाई लेकर वहां से कुल्लू की ओर चल पड़े। लगभग 10:00 बजे हम लोसर पहुंचे। वहां पर हमारी गाड़ियों को रुकवाया गया। क्योंकि केलंग से रैड डी हिमालयन कार रैली का काफिला कुछ समय में लोसर पहुँचने वाला था। मार्ग तंग होने के कारण काज़ा से आने वाली सभी गाड़ियों को लोसर में ही रुकवाया गया था। लोसर में हमने एक ढाबे में भोजन किया। लगभग 12:00 बजे धुआं उड़ाती हुई रैली की पहली कार पहुँच गई। उसके पीछे कारों का पूरा काफिला उधर से गुज़रा और उनके गुज़रने के बाद 1:00 बजे हमारी गाड़ियों को छोड़ा गया। धूल उड़ाती हुई सभी गाड़ियां एक के बाद एक धीरे-धीरे सरकने लगी। हम 2:00 बजे कुंज़ोम पहुंचे। देवी माँ के मंदिर की परिक्रमा करके हमारी जीप ने लाहौल घाटी में प्रवेश किया। बातल से चन्द्रा के किनारे चलते हुए हम सभी साथी अपने इस स्पीति दौरे को सफल मानते हुए 4:00 बजे ग्रम्फुग पहुंचे। ग्रम्फुग में अजेय, डॉ. रणधीर मनेपा, तथा छेरिङ दोर्जे हमसे अलग होकर केलंग जाने वाली बस में बैठ गये और की हम सभी रोहतांग की तरफ चल पड़े।। लगभग 5:00 बजे हम रोहतांग पहुँच गये। रोहतांग में व्यास ऋषि को सकुशल यात्रा के लिए धन्यवाद करके 8:00 बजे शाम तक स्पीति की यादों को दिल में संजोये हुए सकुशल कुल्लू पहुंच गए।

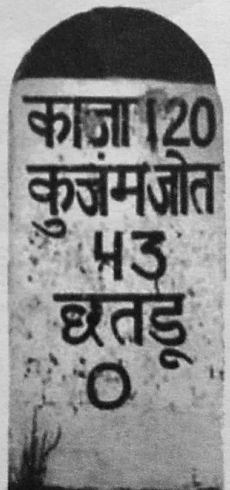

एसो. प्रोफेसर, महाविद्यालय, कुल्लू

तेजराम नेगी

कुलूत जनपद में नागों एवं अप्सराओं का वर्चस्व

नवीं कड़ी में आप ने पढ़ा---
शिरढ़ के काहिका उत्सव का वर्णन। नए सम्वत् के प्रथम दिन देवते के रथ का सजाना, देवता के गूर (चेला) द्वारा आगामी वर्ष में होने वाली प्राकृतिक आपदाओं, घटनाओं से सम्बनधित भविष्यवाणी तथा नए साल का वर्षफल बताना। वैशाख मास के प्रथम गुरुवार को पुरोहित द्वारा नियत और देवता द्वारा स्वीकृत उत्सव का आयोजन तथा उत्सव मनाने की विधि का विस्तृत विवरण------अब आगे...

दसवीं कड़ी- सात बहिनें अप्सराओं का रहस्य----

इस प्रकार व्यासर, 'राय-अखाड़ा' (मन्दरोल) तथा 'राय-अखाड़ा' (शिरढ़) आदि विस्तृत क्षेत्रों में निरंकुश शासन प्रणाली अपनाने वाले निष्ठुर तथा अत्याचारी ठाकुरों, राणाओं को समाप्त करने के पश्चात् कालीनाग एक बार फिर उन दोनों माँ और बेटी के पास पहुंचा और कहा-"हे माता! अब आप दोनों मेरे साथ चलो, क्योंकि अब यहां का सारा क्षेत्र जनशून्य हो गया है और इस स्थान पर आप दोनों के अतिरिक्त मीलों दूर-दूर तक कोई भी मनुष्यों की बस्ती नहीं रही है जो समय आने पर आपके साथ दुःख-सुख में भागीदारी निभाते। अब आप दोनों अपनी आँखें बन्द करके मेरे दोनों कंधों पर चढ़ जाओ। मैं आप दोनों को अब इस स्थान से उत्तराखण्ड की दिशा में बने एक ऐसे रमणीक एवं दिव्य स्थान पर पहुंचा दूँगा जो स्वर्ग से भी सुन्दर है। वहां पर आपको जीवनोपयोगी मनवांछित वस्तुएं स्वतः ही उपलब्ध होती रहेंगी। आप दोनों कलियुग आरम्भ होने तक जीवित रहेंगी। तुम दोनों को अपनी इच्छानुसार मृत्यु प्राप्त होगी।

इस प्रकार उन दोनों की आंखें बन्द होते ही कालीनाग ने एक बड़े आकार के पक्षी की भान्ति आकाश की ओर उड़ान भरी और उत्तराखण्ड की ओर ले गया। गन्तव्य स्थान पर पहुंचा कर तथा वहां पर एक सरोवर के तट पर एक सुन्दर सी कुटिया बना कर उसमें बैठा दिया और कहा- "अब आप दोनों इसी स्थान पर कलियुग के आरम्भ होने तक अपने इष्ट की अराधना में लीन रहकर अपना अगला जन्म सुधारने में मन लगाना। घोर कलियुग आने पर मैं भी आपके निकट ही किसी स्थान पर तपस्या में लीन हो जाऊँगा। अभी मैं फिर उसी स्थान पर वापिस जा रहा हूँ और वहां जाकर जनता-जनार्दन की सेवा में तत्पर रहूँगा तथा दुष्ट प्रवृत्ति के तत्त्वों का नाश करता रहूँगा।" इतना कहकर कालीनाग ने वहां से प्रस्थान किया।

इस प्रकार उत्तराखण्ड से लौटते हुए जब कालीनाग 'हामटा-जोत' (हेमकूट-पर्वत) के दामन में एक दिव्य सरोवर के निकट से गुज़रे तो उन्हें वहां एक देव-अप्सरा को अकेली ही भ्रमण करते तथा फूलों को बीनते हुए देखा। कालीनाग ने एक दिव्य पुरुष का रूप धारण कर उसके सन्मुख जाकर पूछा-" हे वनदेवी! आप कौन हैं और इस निर्जन स्थान में अकेली ही भ्रमण कर रही हैं। आप कहां से आ रही हैं और इस रमणीक क्षेत्र में किस प्रयोजन से इन फूलों को बीन रही हैं?"

अपने सामने एक दिव्य पुरुष को देख कर देव-अप्सरा ने कहा-"हे महाराज! मैं अपना परिचय किसी अपरिचित पुरुष को नहीं दे सकती। सर्वप्रथम आप ही बताएं आप कौन हैं और किस प्रयोजन से आप ने देवराज इन्द्र द्वारा प्रतिबन्धित इस दिव्य क्षेत्र में गुप्त रूप से आकर अतिक्रमण और उल्लंघन किया है? आप का परिचय प्राप्त होने पर ही मैं अपना परिचय देने में समर्थ हो सकती हूँ।"

देव-अप्सरा का क्षोभ भरा उलाहना सुन कर कालीनाग ने कहा-"हे देवी! मैं वासुकिनाग का पुत्र कालीनाग हूँ। मेरी उत्पत्ति कुलूत-जनपद के गोशाल गांव में हुई है। वासुकिनाग गोशाल गांव की एक कन्या की सुन्दरता पर मोहित होकर उससे प्रेम विवाह कर बैठा। उस कन्या के उदर से ही हम अठारह नागों की उत्पत्ति हुई है। मैंने अपना आश्रम कुलूत देवभूमि के एक गांव 'सिद्धपुर' में बनाया है। कुलूत-जनपद एक बहुत ही रमणीक एवं देव-तुल्य स्थान है। वहां की दो महिलाएं जिनमें एक वृद्ध माँ और बेटी मेरी परम भक्तिन बनी हुई हैं। मैं उन्हें लेकर उत्तराखण्ड के एक दिव्य स्थान पर पहुंचा कर लौटते हुए भूलवश आपके इस रमणीक क्षेत्र में पहुंचा हूँ और इस स्थान पर आपको देख कर जिज्ञासावश आपका परिचय प्राप्त करने के उद्देश्य से आपके सामने पुरुष-भेस में प्रकट होकर जो धृष्टता की है उसकी मैं क्षमा चाहता हूँ। इसलिए यदि आपको मेरी बात पर विश्वास हो तो अपना परिचय देने की कृपा करें।" कालीनाग का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् उस देव-अप्सरा ने कहा-"हे नागराज ! मैं इस स्थान पर अकेली नहीं हूँ। हम सात बहिनें निकट के दिव्य सरोवर में निवास करती हैं। हम सातों बहिनें देवलोक की गणिकाएं हैं। आपके सामने इस हिम शिखर की गोद में एक काले बादल का टुकड़ा दिखाई दे रहा है, ठीक इसी के

नीचे एक सरोवर है उसी सरोवर में हम सब सात बहिनें निवास करती हैं। हमारी आज्ञा के बिना कोई भी पुरुष इस दिव्य सरोवर की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। हम सब इस बादल के टुकड़े के नीचे इस सरोवर में तथा इसकी तलहटियों पर स्नान करती, जल-विहार करती, नाचती और गायन-विद्या का अभ्यास में निमग्न रहती हैं। हम नृत्य-कला और गायन कला में रुचि रखने वाली कला की देवियां हैं। हमारी सब से बड़ी बहन का नाम कमला है। वही हमारे कार्य की मार्ग-दर्शिका और इष्ट देवी हैं। उसकी आज्ञा के बिना यहां का पत्ता भी नहीं हिल सकता।" सात बहिनों का परिचय सुनकर कालीनाग ने प्रसन्न होकर कहा- "ओहो! हम सब तो एक ही वंश से सम्बन्धित हैं, क्योंकि मैंने अपने वयोवृद्ध विद्वानों से सुना है कि नागों और अप्सराओं की उत्पत्ति महर्षि कश्यप से हुई है। अप्सराओं और नागों की माताएं भी आपस में सगी बहिनें थीं। हमारे पूर्वज एक ही देवयोनिक जाति से सम्बन्धित थे। इस कारण आप चाहे अप्सराएं हों अथवा गणिकाएं हों, हम सब एक ही देवयोनि से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए नागों और अप्सराओं का आपस में भाई और बहिन जैसा रिश्ता है। अब मुझे अपनी बड़ी बहिन का दर्शन करने का अवसर प्रदान कीजिए।"

कालीनाग की मनोभावना भांप कर वह गणिका अपनी बड़ी बहिन कमला के पास पहुंची और कहा-"इस सरोवर से बाहर मेरी भेंट एक नवागंतुक दिव्य पुरुष से हुई है वह अपने आप को कालीनाग बता रहा है। अब वह आप और अन्य सब बहिनों से भी मिलना चाहता है। अतः आप सब इस सरोवर से बाहर निकल कर उससे मिलो।" तब सभी बहिनें सरोवर से बाहर निकलकर कालीनाग से मिलने गईं। जब सभी बहिनें कालीनाग के समीप पहुंची तो कालीनाग ने प्रसन्न होकर सभी देवांगनाओं से कहा कि हम सब एक ही पूर्वज की सन्तानें हैं। प्रजापति दक्षराज की तेरह कन्याएं महर्षि-कश्यप को ब्याही गईं थीं जिनसे सुर, असुर, देव, दानव, नाग, सर्प, पशु-पक्षी, देवांगनाएं, अप्सराएं, गणिकाएं आदि की उत्पत्ति हुई है। महर्षि-कश्यप को सारी सृष्टि का पिता भी कहा जाता है। इनकी तेरह पत्नियां अर्थात् हमारी माताएं परस्पर सगी बहिनें थीं। इसी कारण नागों, सर्पों अप्सराओं तथा गणिकाओं का भी आपस में भाई-बहिन का सम्बन्ध माना जाता है।

अब आप सब बहिनें मुझे बताएं कि इस काले बादल की छाओं तले सरोवर के अन्दर क्या करती रहती हैं। अब घोर कलियुग निकट आने वाला है। इसलिए सब बहिनें इस कारागार रूपी सरोवर से बाहर निकल कर मेरे साथ चल कर कुलूत देवभूमि के रमणीक क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करो। वहां अपनी-अपनी पसन्द के क्षेत्रों का चयन करके दुःखी मानवता की भलाई में जुट जाओ। क्योंकि महाभारत के नायक श्रीकृष्ण और पाण्डवों के वंशजों का अस्तित्व समाप्त होने के पश्चात् इस देवभूमि में असामाजिक तत्त्वों ने फिर से सिर उठाना आरम्भ किया है जिन्होंने ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों एवं अन्य विद्वानों को भयंकर कष्टों की ओर धकेल दिया है। अतः हम सब का कर्त्तव्य है कि इस देवभूमि में जाकर दुःखी प्राणियों की सहायता और ऋषि-मुनियों की सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत करें।

कालीनाग के इस सुझाव पर सबसे बड़ी बहिन कमला ने कहा कि हम सब बहिनें भी इस सरोवर के अतिरिक्त उन भिन्न-भिन्न उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में रहना पसन्द करेंगी, जहां इस सरोवर की भान्ति पवित्र जल-स्रोत एवं स्वच्छ पानी के झरने हों। अतः इस प्रकार के अच्छे क्षेत्रों के चयन में आपको भी हमारी सहायता करनी होगी। इस पर कालीनाग ने कहा कि आप सब बहिनें इस प्रकार के स्थान बनाने और चयन करने में स्वयं सक्षम हैं और मैं तो हर समय तुम्हारी सहायता में संलग्न रहूंगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इस प्रकार इन सब अप्सराओं ने कालीनाग के साथ कुलूत देवभूमि की ओर प्रस्थान किया और फिर शिरढ़ गांव के पीछे ऊँचे शिखरों में स्थित 'हिम्बरी-परभी', व्यासर-गांव के पीछे दाणुधार, जिल्हणी-धार, कोठी सारी की लोहड़ी-आच्छरी आदि उच्च-शिखरों का चयन किया। कालीनाग ने भी इन देवांगनाओं को यथास्थान स्थापित कर अपने आश्रम 'सिद्धपुर' (शिरढ़) की ओर प्रस्थान किया। (समाप्त)

विपाशा परिसर, बबेली, कुल्लू।

लाहुली मुहावरे

-विकास ओथङ्बा

मुन-मुन शुचि	:	अन्दर से कुछ बाहर से कुछ
तलसा अनदन मशता	:	सजधज कर आना
खनेके केट्रि	:	बुरी तरह से उपद्रव मचाना
द्रुगङ केट्रि लेपा मशता	:	कमज़ोर सा दिखना
जसा तोई ऐ	:	प्रतिरोध नहीं करना
ख्री रमोंइयों खो	:	जान से मारने की धमकी देना
प्यशि मींह	:	पहाड़ों पर चलने में तेज़ आदमी
टोटू पुन्ज़रिङ बङज़ाड़	:	सब से आगे रहने वाला
खुइए बिल्ल	:	दो का आपस में न बनना
पुरिकरे हुन्ज़ितोर में	:	बारिश होने की संभावना
च़ब केट्रि	:	नमक मिर्च लगाना
विषकांटो घा दूह	:	कपटी इंसान
झेंचुरु रनट्रि	:	मेहनत करना
शोङ-शोङ ले शिलज़ि	:	जुए में बुरी तरह से हराना

गाँव योबरङ, लाहुल।

चनाब किनारे बचपन

गणेश ग़नी

चनाब के किनारे रेत में खेलना और रंगीन पत्थरों को इकट्ठा करना हमेशा अच्छा लगता था। वैसा रेत और वैसे रंगीन गोल-गोल पत्थर किसी और नदी के किनारे मिलना मुश्किल है। हमारे लिए चनाब केवल दरिया नहीं है, यह कई सभ्यताओं, संस्कृतियों, लोकगाथाओं, लोकसंगीत, अमर प्रेम कहानियों, गीतों और कविताओं को समेटे निरन्तर बहता जीवन है। जीवन में भी वक्त के साथ कितना कुछ निरन्तर बहता रहता है। इस बहाव में बहुत कुछ तो बालू बन जाता है, कुछ बड़े-बड़े बॉल्डर और थोड़े से रंगीन पत्थर भी। यही रंगीन लुभावने पत्थर हमारी स्मृति में हमेशा-हमेशा रहते हैं।

पांगी में मेरा अपना पैतृक गांव शौर है परन्तु मेरा जन्म ननिहाल कुलाल में अपने माता-पिता की दूसरी संतान के रूप में हुआ। पिताजी वहां वन-रक्षक तैनात थे। फिर उनका तबादला लाहुल के मयाड़नाला के चिमरेट बीट में हुआ। मैं बहुत छोटा था। लाहुली बच्चों के साथ खेलते-खाते मैंने लाहुली भाषा सीख ली थी। गार्ड-क्वाटर के आस-पास खेत और चरागाहें थीं जहां मैं और मेरा बड़ा भाई खेला करते थे। थोड़ी ही दूरी पर एक नाला बहता था जोकि गांव के लोगों को पानी की आपूर्ति करता था। सर्दियों में हियाण (ग्लेशियर) आने पर यह नाला हिमनदी बन जाता था। आस-पास के पानी के सरू (चश्मे) भी बर्फ से ढक जाते थे। जो जलधारा सार्वजनिक पनिहारे तक पहुंचती थी वह भी अवरुद्ध हो जाती थी। लोग बर्फ पिघला कर पानी की व्यवस्था करते थे। सर्दी कम होने पर और अच्छी धूप खिलने के कारण यह हियाण कहीं-कहीं पिघल जाती थी और गोल तथा गहरे गड्ढे बन जाया करते थे। यह समय अच्छा होता था। लोग अब पानी यहां से भरने लगते पर बर्फ में वहां पहुंचना भी आसान न होता। मेरी ज़िद्द के कारण मां मुझे साथ ही ले जाया करती थी। मां मुझे अपनी शॉल से पीठ पर बांधती थी और ग्लेशियर के खोह में से पानी का पीपा भर कर लाती। यह हर सुबह-शाम की गतिविधि थी। गर्मियों में इक्का-दुक्का विदेशी सैलानी कभी-कभी घाटी में पैदल घूमने आते थे। पिता जी को बन्दूक, दूरबीन, रेडियो और घड़ियों का अच्छा खासा शौक था। एक बार एक विदेशी सैलानी से दूरबीन खरीद ली परन्तु दूरबीन का कवर नहीं था। उस सैलानी ने वादा किया कि वह कवर डाक से भेज देगा। कुछ महीनों के बाद हमारे गांव के पते पर इंग्लैण्ड से एक पैकिट डाक द्वारा आया। उस विदेशी ने ईमानदारी की मिसाल पेश की। पिताजी का तबादला चिमरेट बीट से लाहुल के ही भुजुण्ड बीट में हुआ। पूरे एक दिन का पैदल सफ़र था। मैं या तो पिताजी के कन्धे पर सवार होता या फिर किसी मज़दूर के। चनाब के बहते पानी की महक और आवाज़ आज भी महसूस करता हूं। नदी के किनारे पतली पगडंडी कभी ऊपर चढ़ती तो कभी नीचे। जहां चश्मों का मीठा पानी बहता, ऐसे स्थान भोजन करने के लिए चिन्हित होते थे। हम बच्चों को ऐसे स्थानों पर पहुंचने की जल्दी रहती थी ताकि कुछ वक्त आराम करने के साथ-साथ घर से भुजोट (भुजपत्रा) में बांधकर लाई गई तली रोटियां तथा आलू की सब्ज़ी का स्वाद भी लिया जा सके। वैसे बच्चों को ऐसे सफर में डली घी और शहद में गूंथे जौ के सत्तू तथा घी में गेहूं की रोटियों की चूरी खाने में स्वादिष्ट लगती थी।

भुजुण्ड गांव काफी ऊंचाई पर बसा छोटा-सा गांव है। गार्ड-क्वाटर गांव से बाहर एकदम देवदार के जंगल की सीमा पर था। एक निजी घर में किराए के कमरे में प्राथमिक पाठशाला चलती थी। यह मास्टरजी का घर भी था। यहीं से मेरी औपचारिक पढ़ाई आरम्भ हुई। मां-बाप के लाड़-प्यार तथा मेरी ज़िद्द के कारण मैं छह की बजाए सात वर्ष की आयु में स्कूल में दाखिल हुआ। एक गुरु और कोई दर्जन भर शिष्य। जो एक वर्ष मैंने गंवाया था उस की भरपाई बाद में मैंने एक साथ दो कक्षाएं उत्तीर्ण करके कर दी थी। मां घर के काम निपटाकर जुराबें, स्वैटर तथा कुरोशिए से स्कार्फ बुनती थी। मनोरंजन के साधन न के बराबर होते थे। मैंने मां को बुनते देख-देख कर यह काम सीख लिया था। पिताजी को रेडियो सुनने, शिकार करने तथा अराक्ख (शराब) पीने का शौक था। रेडियो पर विविध भारती, ऑल इण्डिया रेडियो की उर्दू सर्विस, रेडियो सिलोन तथा आकाशवाणी शिमला समय-समय पर लगातार बजते रहते थे। 'लकड़ी की काठी' तथा 'कभी कभी मेरे दिल में ख्याल आता है' जैसे गीत अक्सर फिज़ाओं में गूंजते थे। रेडियो पर अनाऊंसर अमीन सयानी की आवाज़ बहुत आकर्षक लगती थी। पिताजी एक दो साथियों के साथ अक्सर शिकार पर निकल जाया करते थे। कभी-कभी तो एक दो दिन जंगलों में ही रह लिया करते थे। ह्यूंत (सर्दियों) में शिकार मिलने की सम्भावना अधिक रहती थी। भयानक बर्फबारी के दौरान चलने वाली बर्फानी हवाएं पेड़ों के बीच से गुज़रती हुई साएं-साएं की आवाज़ करती थी। जिसकी दहशत आज भी याद करने पर डराती है। बर्फ में अधिक देर चलने पर कई बार पांव जल जाते थे। बर्फ की आंच आग की आंच से ज़्यादा खतरनाक होती है। यह बर्फ के क्षेत्र के लोग ही महसूस कर सकते हैं।

भुजुण्ड से पिताजी की बदली पांगी के लिए हुई। अब मुझे अपने गांव शौर के प्राथमिक पाठशाला में दाखिल किया गया। चनाब के दायीं ओर गांव बसा है जिसके खेत नदी तक फैले हैं। गांव के सामने दरिया के पार एकदम सीध खड़ा पहाड़ है जहां नाले और

झरने बहते हैं। इस पहाड़ के बीच में एक फाट है जो एक चरागाह भी है और सर्दियों के लिए घास की आपूर्ति भी करता है। थांगी के बहुत से घने पेड़ हैं। इधर गांव में भी दो नाले बहते हैं। उन दिनों यही पानी पनघटों तक पहुंचता था। गांव की पृष्ठभूमि में भी पहाड़ है जहां से सूर्य उगता है और सामने की पहाड़ी से धूप नीचे उतरती हुई चनाब को पार करके गांव तक चढ़ आती है। सुबह के कुछ ही समय में घटने वाली यह घटना अति सुन्दर लगती थी। धूप का यह चक्र मां की घड़ी थी। मेरा स्कूल जाने का समय और लौटने का समय उन्हें सूरज ही बताता था। भोर और सांझ के वक्त एक और कारण भी कौतूहल पैदा करता था और वो था मवेशियों के जाने और लौटने का वक्त।

लगभग हर घर में भेड़-बकरियां, गाय, चूर तथा चूरी पाले जाते थे। सामान्य उपयोगों के अलावा भेड़-बकरियों का उपयोग मीलों दूर स्थित सरकारी डिपुओं से गेहूं ढोने के लिए किया जाता था। गेहूं और नमक से लदे झुण्ड को 'लादु' कहते हैं। एक दिन में 20 मील तक की यात्रा आम बात थी।

उन दिनों पाठशालाएं दूर-दूर स्थित थीं। हमारे गांव में प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए चार मील चलकर दूसरे गांव में माध्यमिक पाठशाला पहुंचना पड़ता था। पांचवीं कक्षा तक पेन से लिखने की आज्ञा नहीं थी। केवल हाथ से बनी कलम और स्याही से लिखना पड़ता था। लिखाई सुधारने के लिए तख्ती पर कलम से सुलेख लिखना होता था। उन दिनों स्थानीय मिस्त्री द्वारा बनाई गई तख्ती पर तवे की कालिख लगाई जाती थी फिर सूखने पर उसे कपड़े से अच्छी तरह रगड़ कर चमकाया जाता था। उसके बाद सफेद मिट्टी के घोल (मकोल) से सफेद-सफेद अक्षरों में लिखा जाता था। बाद के दिनों में तख्ती की पुताई के लिए गाजड़ी तथा लिखने के लिए काली स्याही उपलब्ध होने लगी। अब हम काले-काले अक्षर चीन्हते थे। दिन में दो बार उस तख्ती पर लिखा जाता था। उन दिनों टाट पर बैठकर छात्र पढ़ते थे और गुरु-शिष्य परम्परा भी कायम थी। गुरुओं का मान-सम्मान पूरा गांव करता था। मेरे ज़हन में हिन्दी की पुस्तक में बने ताजमहल तथा ऊपर आसमान में चांद-तारों की छवि कभी नहीं भूलती। मुझे गणित का फोबिया था, जो आज तक नहीं गया।

हमें रात होने से पहले-पहले अपना पढ़ने का कार्य समाप्त करना पड़ता था क्योंकि बिजली की व्यवस्था नहीं थी। सम्पन्न परिवार तो लालटेन तथा मिट्टी के तेल से जलने वाले बोतल या डिब्बे के लैम्प (ढिबरी) जलाते थे मगर आमजन देवदार तथा चील की बिरोज़े से भरे दल (लकड़ी) के छोटे-छोटे टुकड़े लोहे के दलूंचे (तिपाई) पर जलाते हुए रोशनी का प्रबन्ध करते थे। इस कारण भी लोग रात को शीघ्र सोते और विहान में जागकर दिनचर्या आरम्भ करते। किसान तो तार-ओ-तार, सुबह जब अंधेरा हो और तारे दिखें तथा शाम को भी इतनी देर से लौटना कि आसमान में फिर तारे हों, काम करते।

फुरसत के क्षणों में लोग सांझ को घर की मिट्टी से बनी समतल छतों पर समूह बना-बना कर किस्से कहानियां सुनाते। महिलाएं घरों के अन्दर बैठ खाना पकाने में व्यस्त रहतीं। हम बच्चों को उधओ (झरोखों) से बाहर निकलती खाने की खुश्बू लुभाती रहती। ब्याई (रात का खाना) खाकर लोग शीघ्र सो जाते। महिलाएं सोने से पहले चूल्हे में अंगारों की राख को अच्छी तरह से दबा देती ताकि सुबह उन्हीं अंगारों की चिंगारी से फिर आग सुलगाई जा सके।

गर्मियों की छुट्टियां होते ही ननिहाल जाने का कार्यक्रम बन जाता था। मनोरंजन के नाम पर केवल खेल-कूद तथा मिट्टी के घरौंदे बनाने के सिवा और कुछ भी नहीं था। जाच, उत्सव तथा मेले मनोरंजन के साधन थे। कठिन भौगोलिक परिस्थितियों में बचपन में बहुत कुछ छूट गया। जो कुछ पाया उसे सहेजना-संजोना उससे कहीं ज़्यादा आवश्यक है।

भुट्टी कॉलोनी, कुल्लू।

चन्द्रताल की विज्ञापन दरें:

आवरण (रंगीन):

बैक कवर 280x210mm : रु 15000
भीतर पृष्ठ 1 280x210mm : रु 12000
भीतर पृष्ठ 2 280x210mm : रु 10000

अन्य (श्वेत श्याम):

पूर्ण पृष्ठ 210x280mm : रु 5000
अर्ध पृष्ठ 140x210mm : रु 3000
चौथाई पृष्ठ 105x140mm : रु 1000
शुभकामनाएं : रु 250

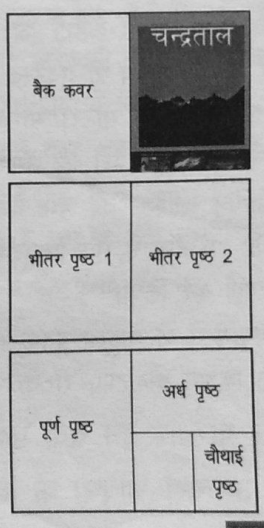

लाहुल के प्रेम सिंह को तेन्ज़िन नोरगे एडवेंचर अवार्ड

लाहुल के करदङ गांव में 8 अगस्त, 1964 में जन्मे आईटीबीपी के जांबाज़ अफसर श्री प्रेम सिंह को वर्ष 2012 के लिए प्रतिष्ठित 'तेन्ज़िन नोरगे नैशनल एडवेंचर अवार्ड' से नवाज़ा गया है।

वे देश के अग्रणी पर्वतारोहियों में से एक हैं। उन्हें विश्व की सबसे ऊंची चोटी एवरेस्ट को दो बार चूमने का गौरव प्राप्त है। पहली बार 10 मई, 1992 को वे इस शिखर पर पहुंचे तथा दूसरी बार 14 मई, 1996 को वे बिना ऑक्सीजन के एवरेस्ट आरोहण करने में सफल हुए। वर्ष 1993 में भारत जापान संयुक्त अभियान में शामिल होकर उन्होनें माऊंट एक्टॉस 7015 मीटर तथा 1995 में माणा पर्वत पर सफल आरोहण किया।

एडवेंचर के क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए वर्ष 2009 के लिए उन्हें राष्ट्रीय पुलिस मेडल से अलंकृत किया गया। अभी हाल ही में 31 अगस्त, 2013 को राष्ट्रपति भवन के दरबार हाल में उन्हें यह प्रतिष्ठित तेन्ज़िन नोरगे नैशनल एडवेंचर अवार्ड प्रदान किया गया।

सम्प्रति श्री प्रेम सिंह जी चण्डीगढ़ स्थित आईटीबीपी मुख्यालय में आई०जी० के पद पर आसीन हैं।

चन्द्रताल परिवार की ओर से आपको हार्दिक बधाई!

– संपादक

भारतीय एनसीसी के पहले एवरेस्ट अभियान में दो लाहुली युवक

कर्मा दवा

रजत बोकटपा

2011 की सर्दियों में भारतीय एनसीसी द्वारा समस्त भारत के 17 एनसीसी निदेशालयों से 108 कैडेटों की चयन प्रक्रिया के साथ यह अभियान शुरू हुआ। उतराखण्ड के उतरकाशी नामक स्थान पर नेहरू पर्वतारोहण संस्थान (NIM) में प्रारंभिक प्रशिक्षण के बाद इन 108 कैडेटों में से 40 कैडेटों को चुना गया, जिन्होंने मई-जून, 2012 में प्री-एवरेस्ट अभियान के तहत 6001 मीटर देओ टिब्बा चोटी आरोहण किया। द्वितीय प्री-एवरेस्ट अभियान के लिए 15 कैडेटों को चुना गया तथा चुनौती थी भारत की तीसरी सबसे ऊंची चोटी माऊंट कॉमेट, ऊंचाई 7756 मीटर। मौसम खराब होने के कारण कुछ लोग इस अभियान में शीतदंश (Frostbite) का शिकार हुए और कुछ को अपने हाथों और पैरों की उंगलियों को गंवाना पड़ा। इस अभियान से अंतिम 9 कैडेटों का चयन हुआ जिन्हें जनवरी-फरवरी 2013 में सियाचिन ग्लेश्यिर की जमा देने वाली सर्दी में प्रशिक्षण दिया गया। इस तरह हर चुनौती का सामना करते हुए अन्त में मई 19-20, 2013 को इस टीम ने सफलतापूर्वक माऊंट एवरेस्ट पर झंडा फहराया तथा भारतीय एनसीसी के इतिहास के पन्नों पर अपना नाम हमेशा के लिए दर्ज कर लिया।

इस अभियान में दो लाहुली युवक भी शामिल थे, कर्मा दवा, सुपुत्र श्री महेन्द्र ठाकुर, गांव गुमरंग, रा०व०मा०पा० केलंग व रजत बोकटपा, सुपुत्र श्री किशन बोकटपा, रा०व०मा०पा० मनाली।

चन्द्रताल परिवार इन युवा पर्वतारोहियों, विशेषकर लाहुल के दोनों युवा पर्वतारोहियों को हार्दिक बधाई देता है तथा उन के उज्ज्वल भविष्य के लिए शुभकामनाएं देता है!

– संपादक

इन सपनों को कौन गाएगा

बलदेव घरसंगी

अजेय की कविताएँ

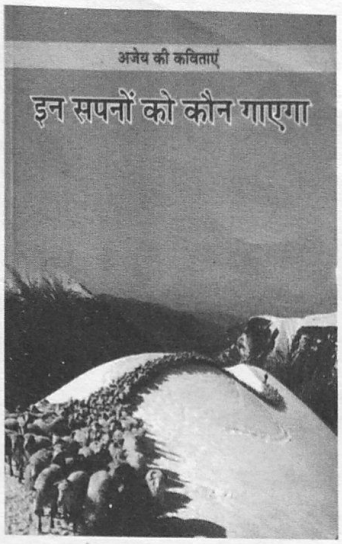

आज हमारा समाज जहां आर्थिक प्रगति की राह पर है तो वहीं वह अपनी असमंजसता, दुविधा और (SANSKRITIZATION) संस्कृतीकरण के अत्यधिक दाब से पीड़ित भी हो रहा है तो उस समय पुनर्जागरण और विद्रोह की सम्भावनाएं अत्यधिक ज़ोर पकड़ती हैं। इस पतनोन्मुख काल में अजेय की कविताओं का संग्रह 'इन सपनों को कौन गाएगा' एक आशा जगाती है कि इस दुविधाग्रस्त काल में समाज की मर चुकी संवेदनाओं के राख के तले कुछ चिंगारियां अभी भी जीवित हैं, जो असंवेदनशील हो चुके सामाजिक मूल्यों की चिकोटी काटेगा, उसे जगाएगा, उस की मुर्दनी छाई हुई सोच को झकझोरेगा। क्योंकि सपनों को गाने की आवश्यकता आन पड़ी है। मेरी समीक्षा अभी इस संग्रह पर नहीं अपितु इस संग्रह से उपजी संभावनाओं पर है। समाज में क्रान्ति, बदलाव, वैचारिक स्फुरण एक संग्रह से उत्पन्न हो ऐसी सम्भावनाएं कमतर रहती हैं, लेकिन यह संग्रह एक आशा जगाती है कि समाज आधुनिकता से रक्तरंजित हो कर मृत नहीं हो गया है, अपितु इस से और व्यवस्थित समाज उभर कर आएगा। लेकिन इस के लिए चारों तरफ से इस पतनोन्मुखता के विरोध में चिंगारियों को सुलगाना होगा, कविता की सर्जना करनी होगी, चिन्तन-मनन करना होगा और इस तरह से क्रिया-प्रक्रिया द्वारा संजो कर पुनर्जागरण की ओर कदम बढ़ाना होगा। जहां तक संग्रह की बात है शिरीष कुमार मौर्य लिखते हैं- ये कविताएं बर्फ से ढकी उस ज़मीन के वास्तविक ताप का एहसास कराती हैं, जहां मनुष्य और प्रकृति आपस में घुलमिल जाते हैं। भोजवन और ब्यूंस की टहनियों के प्रदेश की इन कविताओं में आदमी को ज़िन्दा रखने की आंच है, एक गुनगुना सुखद एहसास है और मनुष्यता के पक्ष में एक लम्बी और ज़रूरी ज़िरह भी। हमें अब अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि बिना बहस के कोई भी कविता मर जाती है। यह देखना सुखद है कि अंतिम निष्कर्ष की भंगिमा के बजाए अजेय की ये कविताएं अपने पढ़त में बहस की बहुत सारी गुंजाइश छोड़ती हैं इसे इन कविताओं की मनुष्यता कहा जाना चाहिए। ऐसे वक्त में जब कवि विद्वज्जन अपने से बाहर की जगहों का सम्मान करना छोड़ रहे हैं, तब अजेय की कविता विश्वास दिलाती है कि किसी भी तरह की रूढ़िवादी निजता और कट्टरता से बाहर सम्भव करने के लिए एक बहुत बड़ा संसार हमेशा मौजूद है और रहेगा। अजेय की ही पंक्ति का सहारा लें तो वे 'सामूहिक ऊर्जा से आविष्ट स्नायुतंत्र' के कवि हैं और यह भी सोचें कि आज की कविता में ऐसे कितने कवि हैं----।

प्रकाशकः दखल प्रकाशन, ग्वालियर।
मूल्यः रु० 150

लाहुल-स्पीति

जीवन और संस्कृति

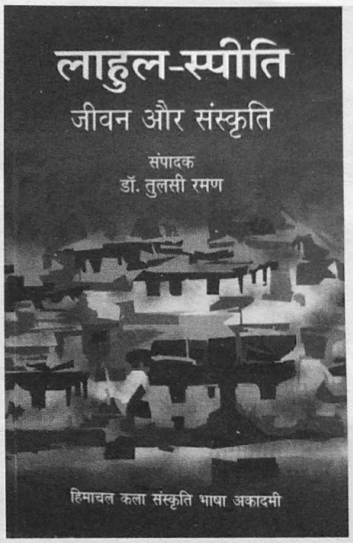

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित व डॉ. तुलसी रमण द्वारा सम्पादित यह उन्नतीस लेखों का संग्रह जून की दोपहरी में एक ठंडे बयार की तरह आधुनिकता की झुलसा देने वाली असमंजसता से आपको कुछ पल के लिए उबार देता है। आप अतीत के सुखद प्रसंगों की याद से उभर कर आ रहे आनन्द और विषाद की मिश्रित भावना से सराबोर हो जाते हैं। आप की गृहातुरता बढ़ जाती है। यह संग्रह डॉ. तुलसी रमण, सचिव हिमाचल भाषा अकादमी की बेहतर सोच का ही परिणाम है। यह संग्रह आधुनिक युवा पीढ़ी के लिए अपने जड़ से इतर रहते हुए उस की एक झलक पाने तथा समझने की दिशा में एक आधार बनेगा। साथ में जिन लाहुलियों ने लाहुली जीवन की मूल संस्कृति, जीवन पद्धति को भोगा है उन के लिए नॉस्टेलजिक बोध ले कर आया है। सभी लेख अच्छे हैं। संग्रह का आवरण डॉ. हिम चटर्जी द्वारा लाहुली गांव को अमूर्त अभिव्यंजनावाद द्वारा दर्शाने का प्रयास अच्छा बन पड़ा है। आज जब लाहुली समाज अपने मूल रूप से विघटित हो रहा है उस समय पर ऐसे संग्रह का छपना बहुत ही सुखद है, खासकर जब हमारी मौखिक परम्परा समाप्त हो चुकी है।

लेखन हमारे सामाजिक अभिव्यक्ति का औज़ार कभी नहीं रहा है, तो वहां अधिकतर लेख लाहुली शोधकर्ताओं व लेखकों द्वारा लिखे गए हैं यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है। लाहुल के आम नागरिकों को शायद ज्ञात न हो कि हमारे पास कुछ ही शोधकर्त्ता व लेखन विधा में रत व्यक्ति हैं। अब उनके अथक प्रयास से हमें अपनी मूल संस्कृति से भिज्ञ रहने के लिए प्रचुर मात्रा में पठन योग्य दस्तावेज़ उपलब्ध हैं।

आज मैं श्रद्धेय स्व. के. अंगरूप लाहुली जी को शत-शत नमन करता हूँ, जिन्होंने न सिर्फ लाहुली घुरे का अनुवाद के साथ संग्रह किया अपितु विभिन्न बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद, स्व. टेगौर द्वारा रचित नोवल पुरस्कार से सम्मानित गीतांजलि का तिब्बती में अनुवाद व तिब्बती भाषा के व्याकरण पर महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया और प्रचुर मात्रा में शोधकार्य छोड़ गए हैं। आज श्री छेरिङ दोर्जे जी, श्री तोबदन जी, श्री बनारसी लाल जी, श्री ठिनले शाशनी जी और श्री बलराम जी निःस्वार्थ भाव से लाहुल व प्रदेश से सम्बन्धित विषयों पर शोधकार्य तथा लेखन में रत हैं। इसी प्रकार लाहुली समाज को आज़ादी के दौरान नेतृत्व देने वाले श्री शिवचन्द ठाकुर जी भी उस समय से सम्बन्धित अति महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण अपने लेख में लिख रहे हैं जो आने वाले समय में एक दस्तावेज़ का रूप लेगा और नई पीढ़ी को प्रेरणा देगा। अन्त में इस संग्रह को प्रकाशित करने के लिए कोटि-कोटि धन्यवाद। मैं देख रहा हूँ कि जब भी लाहुली साहित्य, शोध और प्रकाशन की बात आएगी तो डॉ. तुलसी रमण के सहयोग और निष्ठा को हमेशा सराहा जाएगा।

प्रकाशकः हिमालय कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला।
मूल्यः सजिल्दः रू० 250 रू०, पेपर बैकः रू० 150

गीत अतीतः घुरे संग्रह

पिछले महीने ही लाहुली संस्कृति से सम्बन्धित एक सुखद खबर आई और इस के विमोचन कार्यक्रम में बुलाया गया तो मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं था कि मैं एक अति महत्वपूर्ण घटना का गवाह बनने जा रहा हूँ। बदाह गोम्पा के सभागार में जब विशिष्ट लोगों को बैठे देखा तो लगा आज कुछ नया होने जा रहा है। इस बीच विभिन्न विचारकों ने अपने विचार रखे और ठाकुर देवीचंद द्वारा संग्रह का विमोचन किया गया और उन के विचार व्यक्त करने के बाद जब इस संग्रह को ऑडियो सिस्टम पर चलाया गया तो मैंने आग्रह किया कि इसे आज अपने मूल रूप में गाया जाए। इस प्रकार इस सांस्कृतिक धरोहर 'गीत अतीत' के निर्माण कर्त्ता व गायक श्री हीरालाल राश्पा, श्री शामलाल क्रोफा, श्री देवीसिंह कपूर, श्री शेरसिंह फकीरू तथा श्री देव कोड़फा ने जब घुरे गाना शुरू किया तो फिर लगा कि नहीं अभी उम्मीद है, जीवित हैं सम्वेदनाएं, खोया नहीं अपितु भ्रूण आकार ले रहा है, आवश्यकता है इसे निरन्तर पोषित करने की, ताकि यह भ्रूण आकार ले सके।

समाज किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं अपितु विभिन्न समूहों, व्यक्तिगत अभिलाषाओं, सामूहिक सम्वेदनाओं, सोच और त्याग से पोषित होता है। पिछले तीन-चार दशकों से यह कहा जाता था कि घुरे का संग्रह होना चाहिए और तभी व्यक्तिगत प्रयास से श्री सतीश लोप्पा ने घुरे संग्रह 'गीत अतीत' रिन्चेन जांग्पो सांस्कृतिक सभा तथा भाषा अकादमी के सहयोग से प्रकाशित किया और इस के छपने के दो दशक बाद सामूहिक प्रयास से इस ने मूर्त रूप लिया। इस बीच में काफी प्रयास हुए परन्तु इसे सजगता से अपने मूल रूप में प्रस्तुत उपरोक्त विशिष्ट और विचारवान लोगों द्वारा किया गया। इस के लिए लाहुली समाज इन का हमेशा ऋणी रहेगा। इस संग्रह के साथ अगर शिव-पार्वती विवाह घुरे को हम अपने अब हो रहे विवाह संस्कार का अटूट अंग बनाएं तो इस संग्रह को सार्थकता और निरन्तरता दोनों मिलेंगी। और न सिर्फ समाज मूल संस्कारों से पोषित होता रहेगा, बल्कि हम अपनी अस्मिता की रक्षा कर पाने में सक्षम होंगे।

निर्माणकर्ताः सीनियर सिटिज़न लाहौल फार द प्रोमोशन ऑफ ट्रेडिशनल कल्चर, मोहल, कुल्लू।
मूल्यः अव्यक्त
संपर्कः हीरा लाल राशपा, गांव मोहल। फोन 94590 13831

BUG

Design Studio

Showroom: Ramshila, A.B. Kullu

98160 02518 / 98160 19157

gharsangi@yahoo.co.in / bugintl@yahoo.com

Suits

Tweeds

Fabrics

Shawls

Stoles

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा डिजिटल एक्सप्रेस, मनाली से मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित। संपादक, डॉ. छिमे शाशनी।